

तन्त्रसङ्ग्रहे

भूतशुद्धितन्त्रम्

(तन्त्र एवं योग की सामाजिक उपयोगिता)

‘निर्पला’ हिन्दी अनुवाद सहित

सम्पादक एवं सानुवाद हिन्दी समीक्षक

डॉ. रूपेश कुमार चौहान



कृष्णदास संस्कृत सीरीज



कृ० । ६९४

भूतशुद्धितन्त्रम्

(तन्त्र एवं योग की सामाजिक उपयोगिता)

'निर्मला' हिन्दी अनुवाद सहित

सम्पादक एवं सानुवाद हिन्दी समीक्षक

डॉ. रूपेश कुमार चौहान

एम. ए. संस्कृत एवम् इतिहास

जे. आर. एफ. संस्कृत तथा नेट इतिहास
तदर्थ सहायक प्रोफेसर जाकिर हुसेन कॉलेज, दिल्ली



चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि०सं० २०७५, सन् ३०१८

ISBN : 978-81-218-0417-2

© चौखम्बा कृष्णदास अकादमी

के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन

गोलघर (मैदागिन) के पास

पो० बा० नं० १११८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)

फोन : (०५४२) २३३३४५८ P.P. & २३३५०२०

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन

गोलघर (मैदागिन) के पास

पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)

(आफिस) (०५४२) २३३३४५८

(आवास) (०५४२) २३३५०२०, २३३४०३२

Fax : 0542 - 2333458

e-mail : cssoffice01@gmail.com

web-site : www.chowkhambasanskritseries.com



क१/६४८

अधिकांश विद्वानों के अनुसार विश्व की समस्त भाषाओं में संस्कृत भाषा सबसे प्राचीन भाषा है, इसका विशाल कलेवर है, परन्तु सम्प्रति इसका कलेवर संकुचित हो गया है। इस कारण है कि इसका अधिकांश भाग यवन शासकों की क्रोधाग्नि में सदा के लिए भस्म के रूप में परिवर्तित हो गया। मुस्लिम शासक बिन बख्तियार खिलजी ने १२०३ ई. में विश्व प्रसिद्ध नालंदा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय को आग के हवाले कर दिया, जिसकी राख आज भी चीख-चीख कर दुष्ट मुस्लिम शासक को कोसती हुई अपनी विशालता को बता रही है। वे नालंदा और तक्षशिला विश्वविद्यालय, जिन्होंने समस्त विश्व को अद्वितीय ज्ञान की आभा से प्रकाशित किया। आज खण्डहर के रूप में अपने अतीत की गरिमा को बता रहा है। नालंदा विश्वविद्यालय संस्कृत, पालि और प्राकृत के ग्रन्थों का भण्डार था। विशेष रूप से उसमें संस्कृत साहित्य की निधि सुरक्षित थी। पता नहीं कितना विशाल संस्कृत भाषा का साहित्य उस आग में भस्म हो गया, जो कुछ बचा हुआ है, वह भी कम नहीं है। उस बचे हुए साहित्य को संजो कर रखने में मठों के महन्तों और संग्रहालयों की भूमिका है। भारतीय संस्कृति को मिटाने का जितना सफल प्रयास मुस्लिम शासकों ने किया, उतना अंग्रेजों ने नहीं किया। मुस्लिम शासक सभी लुटेरे मूर्ख और गंवार थे। उन्होंने इस साहित्य के महत्व को नहीं समझा। उन्होंने बंदर की तरह सुन्दर साहित्य रूपी बागीचे को बर्बाद कर दिया तथापि जो भी बचा है, वह कम नहीं है। अब दुःख तो इस बात का है, उस भस्मीभूत साहित्य में कौन-कौन वैज्ञानिक रहस्य थे, जो आज समाजकल्याण के कारण बनते; क्योंकि जो भी अवशिष्ट है, उनमें सम्भवतः प्रत्येक वैज्ञानिक अनुसंधानों की मूल प्रेरणा तो अवश्य है।

खैर, जो भी बचा हुआ है, वह कम नहीं है। कम ही नहीं, अत्यन्त रहस्यपूर्ण है, जिसमें समस्त वैदिक साहित्य, स्मृतियाँ, पुराण और अनेक महाकाव्य, काव्य, नाटक तथा असंख्य तन्त्र ग्रन्थ आते हैं। समस्त संस्कृत वाङ्मय दो भागों में विभक्त है, वे हैं—निगम और आगम। तदनुसार भारतीय संस्कृति निगमागम मूलक है। निगम-आगम क्या है? इस विषय में कुलूकभट्ट का कथन है कि ईश्वर प्रणीत धर्मग्रन्थ दो प्रकार के हैं—वैदिक और तान्त्रिक। “द्विविधा हि ईश्वर प्रणीता मन्त्रग्रन्थाः वैदिकाः तान्त्रिकाश्च।”

देवी भागवत, पुराण में निगम शब्द की व्युत्पत्ति है—“निगम्यते ज्ञायतेऽनेन

इति निगमः—अर्थात् जिसके द्वारा किसी भी विषय अथवा तत्त्व को जाना जाता है, उसे निगम कहा जाता है। ‘नि’ उपसर्ग पूर्वक ‘गम्’ धातु में “तत्रभवः” सूत्र से ‘अण्’ प्रत्यय से निगम शब्द बना है। ‘गम्’ धातु जाने, पहुँचने तथा ज्ञान के अर्थ में प्रयुक्त होती है तथा ‘नि’ उपसर्ग का अर्थ निश्चित रूप से है, अतः निगम का अर्थ हुआ कि निश्चित रूप से किसी तथ्य, तत्त्व अथवा विषय तक पहुँच सके, उसे जान सके, उसे निगम कहा जायेगा। इस दृष्टि से वैदिक साहित्य ही निगम की संज्ञा का अधिकारी है; क्योंकि वैदिक साहित्य मानव का उचित मार्गदर्शन करता है।

‘आ’ उपसर्ग पूर्वक ‘गम्’ धातु में ‘अच्’ प्रत्यय से आगम शब्द बनता है। आ उपसर्ग आ=समन्तात् के अनुसार समन्त अर्थ में आता है तथा इसका अर्थ विशिष्ट क्रम भी है, समन्त का अर्थ होगा—सम्यक् प्रकार से आदि से अन्त तक, जो पूर्ण की पराकाष्ठा है तथा गम् धातु तो जाने, पहुँचने और जानने के अर्थ वाली है ही, अतः आगम शब्द का अर्थ हुआ, जिसके द्वारा सम्यक् प्रकार से आदि से अन्त तक विशिष्ट क्रम से तत्त्व विषय अथवा तथ्य तक पहुँचा जा सके, उसे आगम कहते हैं। इस व्याख्या के अनुसार आगम-निगम से भी महत्वपूर्ण साहित्य माना जा सकता है। इसलिए जिन धर्मनिष्ठ विद्वानों की तन्त्रमार्ग पर असीम श्रद्धा है, उन्होंने तन्त्र साहित्य को पञ्चम वेद कहा है। बङ्गाल प्रदेश के शास्त्र विद्वानों ने तो तन्त्रग्रन्थों को वेदों से भी महत्वपूर्ण माना है।

आगम शब्द की व्याख्या करते हुए वाचस्पति मिश्र ने कहा है कि ‘आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्माद् अभ्युदयनिःश्रेयसोपाया स आगमः’ अर्थात् जिससे कल्याणकारी उपाय बुद्धि में आते हैं, आरोहण करते हैं, वह आगम है।

प्राचीन काल से ही समाजकल्याण साधना की दो धारायें भारत में चली आ रही हैं। परम्परानुसार आगमशास्त्र (तन्त्र साहित्य) के प्रवर्तक आदिनाथ श्री शङ्कराचार्य माने गये हैं; क्योंकि इन्होंने ही इसका सामाजिक प्रवर्तन किया है, परन्तु तन्त्र साहित्य के आदिकर्ता स्वयंभू नारायण ही कहे गये हैं। शारदातिलक में आगम का अर्थ बताते हुए कहा गया है कि जो शङ्कर के मुख से आये हुए हैं तथा पार्वती के कानों में गये हुये हैं, उस परम पावन शास्त्र को आगम कहा गया है।

आगतं शिववक्त्रेभ्योः गतं च गरिजाश्रुतौ।

तदागम इति प्रोक्त शास्त्रं परम पावनम्॥।

इस उपर्युक्त श्लोक में आगम (तन्त्र साहित्य) की भी वेदों के समान

ईश्वरनिर्मितता सिद्ध होती है। तन्त्रशास्त्र के श्रेष्ठ ग्रन्थकार भास्कर राय के अनुसार वेदों का अनुगमन करने के कारण तन्त्रों को परतः प्रामाण्य माना गया है। कुलार्णव तन्त्र में कौलागम को वेदात्मक शास्त्र आगम कहा गया है। इस परम्परा के अनुसार आगम (तन्त्रशास्त्र) वेदतुल्य माना गया है।

तन्त्र साहित्य कोई सामान्य एवं सीमित साहित्य नहीं है। इसमें लाखों ग्रन्थ आते हैं। असंख्य ग्रन्थ तो अभी संग्रहालयों एवं मठों में पाण्डुलिपि रूप में स्थित है तथा अनेकों ग्रन्थ यवन शास्त्रों की क्रोधग्निमें सदा-सादा के लिए विलुप्त हो गये। जो भी साहित्य उपलब्ध है, वह कम तथा कम महत्वपूर्ण नहीं है। यह तन्त्र साहित्य केवल हिन्दू साहित्य में ही नहीं है, जैन साहित्य में, नमस्कार मन्त्र कल्प, प्रतिष्ठा कल्प, चक्रेश्वरी कल्प, ज्वालामालिनी कल्प, पद्मावती कल्प, सूरिमन्त्रकल्प, वाग्वादिनी कल्प, श्री विद्या कल्प, वर्द्यमान विद्या कल्प, रोगाप्हारिणी कल्प आदि अनेक तन्त्र ग्रन्थ विद्यमान हैं।

बौद्ध साहित्य में, बसुधारा कल्प, घण्टा कर्ण कल्प, तारा कल्प आदि अनेक ग्रन्थ हैं। वैदिक साहित्य में तो इनका एक अलग भण्डार ही है।

अतः तन्त्रशास्त्र केवल हिन्दुओं का ही साहित्य नहीं है, यह किसी न किसी रूप में सब धर्मों में प्रचलित है।

जब हम तन्त्र शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करते हैं तो तनु=विस्तार अर्थ वाली धातु में 'षट्' प्रत्यय से तन्त्र शब्द बना है, जिसका अर्थ है—तनोति तन्यते वा। अर्थात् जो ज्ञान का विस्तार करता है अथवा जिसके द्वारा ज्ञान का विस्तार किया जाता है। वह तन्त्र कहा जाता है।

तन्त्र का इतिहास—तन्त्र का इतिहास प्राचीन तो है, परन्तु वेदों से प्राचीन नहीं है; क्योंकि प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में तन्त्र करघे के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अष्टाध्यायी, महाभाष्य, याज्ञवल्क्य स्मृति 1/228, कौटिल्य अर्थशास्त्र, चरक, बृहस्पति आदि ने तन्त्र का अर्थ युक्ति या सिद्धान्त माना है। बाद में अथर्ववेद में और प्रायः अधिकांश पुराणों में तन्त्रविद्या का परिचय प्राप्त होता है। अतः तन्त्रविद्या अधिक प्राचीन नहीं है। रुद्रयामल तन्त्र में कहा गया है कि यह महाविद्या वशिष्ठ ऋषि के समक्ष प्रकट हुई थी। उसने इस जानने के लिए वशिष्ठ से बुद्ध के पास चीन देश जाने को कहा। यही नहीं, यह भी कहा कि उस बौद्ध देश चीन को जाओ, जहाँ अथर्ववेद भी है तथा उन्होंने वहाँ पञ्चमकारों के उपयोग का निर्देश भी दिया। (रुद्रयामल तन्त्र, पटल 7, श्लाक 121-123, 125, 135, 152-153, 157-158, 160-161)। इससे तो यह भी सिद्ध होता

है कि यन्त्र-तन्त्र-मन्त्र विद्या का उत्तम ग्रन्थ अथर्ववेद चीन से लाया गया तथा चीन देश में महात्मा बुद्ध द्वारा ले जाया गया हो, फिर बाद में लाया गया है।

जादू-टोना के रूप में 'वेदों' में इसकी चर्चा मिलती है, परन्तु जादू-टोना के रूप में इसकी निन्दा की गई है। अथर्ववेद में वशीकरण और रोगोत्पादक कीड़ों को नष्ट करने वाले मन्त्र मिलते हैं (अ० ३/५ तथा २/३०)। विन्टरनित्य के अनुसार पाँचवीं-छठी शताब्दी पूर्व भी तन्त्र साहित्य की उत्पत्ति हुई होगी।

तन्त्रों के अनेक तत्त्व अथर्ववेद ब्राह्मण ग्रन्थों एवं उपनिषदों में भी प्राप्त होते हैं। पुराणों में स्कन्दपुराण, पद्मपुराण, कालिका पुराण, ब्रह्मवैर्वतपुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, मार्कण्डेय पुराण आदि में तन्त्रों का वर्णन मिलता है। यहीं नहीं, महाभारत में भी तन्त्रों का वर्णन उपलब्ध होता है। वे पुराणों और तन्त्रों को हीन कोटि के लेखकों की कृतियाँ मानते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने तो पुराणों और तन्त्रग्रन्थों को पाखण्डियों का ग्रन्थ कहा है।

महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ के अनुसार तान्त्रिक साहित्य के इतिहास में दश शिवागम और अठारह रुद्रागम के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन्होंने कहा है कि सम्प्रति भले ही आगम साहित्य के प्रति लोगों का अनादर है, इसलिए कोई विघ्न नहीं है, फिर भी भारतीय संस्कृति की चर्चा में वैदिक साहित्य की भाँति आगम साहित्य की चर्चा का भी एक विशिष्ट स्थान है। किरण्यागम के अनुसार परमेश्वर ने सबसे पहले दश शिवों को उत्पन्न करके सबको अलग-अलग महाज्ञान का हिस्सा दिया। जिसमें १-प्रणव को कामिकागम, २-सुधी को योगजागम, ३-दीरत को चिन्तागम, ४-कारण को कारणागम, ५-ईशा को सुदीपित्कागम, ६-सुशिव को सुदीपागम, ७-सूक्ष्म को सूक्ष्मागम, ८-काल को सहस्रागम, ९-धनेश को सुप्रयेदागम, १०-अंशु को अंशुमान आगम।

इसी तरह अठारह रुद्र हैं, जिनके अठारह आगम वह हैं—१-विजय, २-निःश्वास, ३-परमेश्वर, ४-प्रोदगीत, ५-मुखिम्ब, ६-सिद्धमत, ७-सन्तान, ८-नारसिंह, ९-चन्द्रहास, १०-वीरभद्र, ११-स्वायम्भूव, १२-विरज, १३-कौछ्य, १४-माकुट, १५-किरण, १६-ललित, १७-आग्नेय, १८-ज्ञात नहीं। अब इनके अलग-अग श्रोता भी हैं।

कामिकागम के अनुसार शिव पञ्चमुखी हैं, वे मुख है—सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान, उनके पाँच तन्त्र हैं—सदाशिव के भी पाँच मुख हैं—वे हैं, जो निम्नवत् हैं। वे ही उनके सद्योजात आदि कहे जाते हैं।

सदाशिव

उत्तरमुख	पश्चिममुख	दक्षिणमुख	पूर्वमुख
सद्योजात शिव	वामदेव शिव	अधोरशिव	तत्पुरुष शिव इशान शिव

कालिकागम के अनुसार अठारह तन्त्र बतलाये गये हैं। इनमें ज्ञान सम्बन्धी शुद्धमार्ग, अशुद्धमार्ग और मिश्रमार्ग इन तीन भागों का उल्लेख है।

तन्त्रोलोक में प्रसिद्ध टीकाकार जयरथ ने श्री कंठसंहिता के अनुसार चौसठ भैरवागम-अद्वैतागमों का उल्लेख किया है। वे आठ-आठ भागों में विभक्त हैं। वे 1-भैरवाष्टक, 2-यामलाष्टक, 3-मताष्टक, 4-मंगलाष्टक, 5-चक्राष्टक, 6-बहुरूपाष्टक, 7-वागीशाष्टक, 8-शिखाष्टक।

इस प्रकार ये सब प्रत्येक आठ-आठ के क्रम से 64 होते हैं। इनमें सबके अलग-अलग नाम हैं। नवीं शताब्दी के आरम्भ में शिखाष्टक के वीणा शिवा सम्पोद और शिरश्छेद नामक तन्त्र भारत से कम्बोज चले गये।

कौलितन्त्र—शङ्कुराचार्य ने आनन्दलहरी में 64 तन्त्रों की चर्चा की है। आनन्दलहरी के प्रसिद्ध टीकाकार लक्ष्मीधर ने “चतुःषष्ठ्या तन्त्रैः सकल मनुसन्धाय भुवनम्” के पाठ संशोधन में बताया गया है कि इस श्लोक में महामाया शास्त्र आदि चौसठ तन्त्रों के द्वारा सभी प्रपञ्चों की वंचना की बात कही गयी है। इन तन्त्रों में प्रत्येक में किसी न किसी सिद्धि का वर्णन किया गया है। अतः देवी के अनुरोध से भगवान् शङ्कर ने एक महत्वपूर्ण पुरुषार्थ साधक भगवती तन्त्र का निर्माण किया। रुद्रयामल 46-221 लक्ष्मीधर के इन 64 कुल मार्गीय तन्त्रों का है। वेद विरुद्ध एवं संसार को नष्ट करने वाला माना है। पैसठवें तन्त्र का भी उल्लेख है, जिसे शिवशक्ति दोनों के सम्मिश्रण से उभयात्मक कहा है।

ये सभी कौलिक तन्त्र विशेषतः इस संसार के भौतिक सुखों से सम्बन्धित हैं। पारमार्थिक सुखों पर ध्यान नहीं दिया गया है। इसीलिये लक्ष्मीधर ने इन्हें अवैदिक कहा है। साथ ही यह भी कहा है कि प्रायः सभी तन्त्र सवर्णों के लिए हैं, परन्तु शूद्रों के लिए तन्त्र नहीं थे। अतः शूद्र भी इन कौलिक तन्त्रों के अध्ययन के अधिकारी हैं। उपर्युक्त ये सब आठ-आठ की संख्या में हैं इनमें—

पंच शुभागम

वैदिक मार्ग को ही सभय मार्ग कहा गया है। ये ही पाँच शुभागम हैं।

इनक, सनन्दन, सनत्कुमार, वशिष्ठ और शुक्र संहिताओं को ही शुभागम पञ्चम कहा गया है। इनके अनुसार सोलह विद्यायें स्वीकृत हैं और 64 विद्याओं की चन्द्र ज्ञानविद्या के अर्न्तगत 16 नित्याओं की प्रधानता मान्य है। इसलिए यह मार्ग कौलमार्ग कहा गया है। भास्कर राय के अनुसार वामकेश्वतन्त्र है। जिसके अन्दर ही नित्य षोडशिकार्णव आ जाता है। सौन्दर्य लहरी के अनुसार पैंसठवां तन्त्र ज्ञानार्णव है। कलियुगीन 64 तन्त्र-तोडलतन्त्र की सूची सर्वानन्द के सर्वोल्लास पृष्ठ 5 पर 5-20 श्लोक में काली, मुण्डमाला तारा से लेकर कामाख्या तन्त्र तक की गणना की गयी है। इनमें 63 तन्त्रों का ही उल्लेख है; परन्तु दशरथी तन्त्र में 64 तन्त्रों का नाम उल्लिखित बतलाया गया है। इसकी लिपिबद्ध पोथी 'इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी' लन्दन में है।

हरिवंश के अनुसार श्रीकृष्ण ने दुर्वासा से चौसठ अद्वैत तन्त्रों का अध्यापन किया था। अतः कलियुग में दुर्वासा को अद्वैत तन्त्र का प्रकाशक माना जाता है। आठ प्रकार के यामल बताये गए हैं। जिनका मूल है—ब्रह्मयामल तन्त्र आठ प्रकार के हैं। पिङ्गलामल के अनुसार पुराने समय के ब्रह्मयामल का अनुशरण करने वाले सात तन्त्र प्रचलित हैं, जिनमें दुर्वासा मत और सारस्वत मत प्रसिद्ध थे। इस प्रकार तन्त्र साहित्य से परिचय कराने के लिए पण्डित गोपीनाथ कविराज ने दश शिवागम, अठारह रुद्रागम, चौसठ भैरवागम, चौसठ तन्त्र कुलमार्ग, शुभागम पंचक (समयमार्ग) तथा नवयुग के चौसठ तन्त्रों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है।

तान्त्रिक संस्कृति का विकास—एक समय था कि वैदिक संस्कृति लुप्त हो जाती थी। इस साहित्य के पुनरुद्धार के लिये भारतीय एवं पश्चिमदेशीय विद्वानों के अथक परिश्रम से अंग्रेज शासकों की ओर से गठित पुरातत्व विभाग ने इतिहास के विविध क्षेत्रों में स्थापत्य, भास्कर्य, मुद्रा, शिलालेख आदि विषयों में अधिकांश विस्मृत तथ्यों का उद्घाटन किया, जिसमें पश्चिम के मैक्समूलर जैसे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वानों का पहला उद्योग भूले हुए वैदिक वाङ्मय के पुनरुद्धार की दिशा में रहा। भारतीयों को पाश्चात्य विद्वानों के उपकार को भूलना नहीं चाहिए जहाँ मुस्लिम शासकों ने भारतीय संस्कृति एवं साहित्य को समूल नष्ट करने में लेशमात्र भी कमी नहीं छोड़ी। वही अंग्रेज शासकों ने भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के महत्व को हम भारतीय को समझाया। जहाँ वैदिक वाङ्मय का श्रेय महामना मैक्स मूलर को जाता है, वही विस्मृत तान्त्रिक वाङ्मय के पुनरुद्धार का श्रेय सर जॉन उडरफ उपनाम लेखक एक्लेन को जाता है। अतः इस क्षेत्र में उनके योगदान को भूलना नहीं चाहिए।

यद्यपि विभिन्न स्थानों में आंशिक रूप से तान्त्रिक ग्रन्थों का प्रकाशन हो रहा है, किन्तु सम्पूर्णनन्द संस्कृत विश्वविद्यालय का ही इस क्षेत्र में अधिक उत्साह दिखाया गया है। वैसे भी देखा जाये तो काशी प्रसिद्ध तान्त्रिकों की साहित्य भूमि रही है। यहाँ पर अनेकों तान्त्रिक साधक हुए हैं। वे हैं— 1-स्वतीतीर्थ, 2-राघवभट्ट, 3-सर्वानन्द परमहंस, 4-विद्यानन्दनाथ, 5-महीधर, 6-नीलकंठ चतुर्चर्द, 7-प्रेमनिधि पन्त, 8-भास्कर राय, 9-शङ्करानन्दनाथ, 10-माधवानन्दनाथ, 11-क्षेमानन्द, 12-सुमगानन्दनाथ, 13-काशीनाथ भट्ट।

वैदिक एवं तान्त्रिक साहित्य—इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वैदिक साधना ही प्रधान है; परन्तु यह भी भूलना नहीं चाहिये कि वेद अनेकों प्रकार की धारणाएँ का मिश्रण है। यदि इस पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाए तो तन्त्रधारा ही प्रधान है। प्राचीनतम् ग्रन्थ ऋग्वेद को छोड़कर अप्रत्यक्ष रूप से वैदिक धारा की उपासना अधिकांशतः तान्त्रिक धारा से मिली हुई है। उपनिषद् आदि में संवर्ग, उद्गीथ, उपकोशल, भूमा, ददर, पर्यङ्क ये सभी गुप्त विद्यायें इसी में आती हैं। यहाँ तक कि वैदिक क्रियाकाण्ड भी तो तान्त्रिक धारा में आते हैं। वेदों में अनेक अध्यात्म विद्याएँ हैं। वेदान्त भी इन्हीं विद्याओं के अन्तर्गत आता है। गम्भीरतापूर्वक देखा जाए तो मूलभूत वैदिक तथा तान्त्रिक अथवा आगमिक ज्ञानों में कोई खास भेद नहीं है।

वेदों और तन्त्रों की मूल दृष्टि शब्दात्मक ज्ञान विशेष है। ये शब्द लौकिक नहीं दिव्य हैं और ईश्वर निर्मित हैं। मन्त्रदृष्टा व्यक्तिगण इसे ही प्राप्त कर सर्वज्ञता प्राप्त करते थे। ऋषिगण समान्यजन को उपदेश द्वारा मन्त्रज्ञान प्रदान करते थे। इसलिए वे मन्त्रद्रष्टा कहे जाते थे। जब मन्त्र द्रष्टा ऋषि अपने मन्त्र का पूरा अभिप्राय जन समुदाय के समक्ष नहीं रख सके, तब सतर्क पद्धति का प्रारुद्भाव हुआ। सतर्क से अभिप्राय त्रि. र. तथा त्रिफटा दार्शनिक साहित्य में सतर्क का विशेष मण्डन किया है। वैदिक साहित्य में भी यह लिखित मिलता है कि जब ऋषिगण अन्तर्हित होने लगे तो तर्क पर ही ज्ञान का भार दिया गया है। अतः सब कुछ सतर्क के आधार पर सिद्ध किया जाने लगा। सतर्क के साथ ही ज्ञान का निश्चय था, कुतर्क के आधार पर नहीं। मनुसंहिता के अनुसार धर्मज्ञ वही है। जो ऋषिदृष्ट वेद तथा तन्मूलक स्मृति शास्त्रों को वेदानुकूल तर्क से विचारता है।

आर्ष धर्मोपदेशञ्च विरोधिना।

यस्तर्केणानुसन्धते स धर्म वेद नेतरः ॥ —(मनु. 12.101)

सबमें यह भावना हो गयी कि सभी साधारण जिज्ञासु लोग अवरकोटि के हैं। अतः सब कुछ सतर्क पर ही अवलम्बित है।

तन्त्रशास्त्र की दृष्टि में तन्त्र का आधार कोई मूल पुस्तक नहीं है। तन्त्र तो एक ईश्वरीय ज्ञान विशेष है। ऐसे ज्ञान को ही आगम कहा जाता है। तन्त्र मत में वाक् परावाक् ही अखण्ड आगम है। पश्यन्ति अवस्था में यह स्वयं ज्ञेय (जानने योग्य) रूप में स्व प्रकाश के साथ प्रकाशित होता है। वही ज्ञान मध्यमा वाणी में उत्तर कर शब्द रूप में बदल जाता है और यह शब्द चित्र का विषय है। अर्थात् विचार (सोच) पर आधारित है। शब्द ज्ञान को गुरु की अपेक्षा होती है। फलतः एक आधार से दूसरे आधार में संचारित होता है। अनेक प्रकार के शास्त्र एवं गुरु परम्परा मध्यमा भूमि में प्रकट होती हैं। तब बैखरी में वह ज्ञान स्थूल रूप में प्रकट होकर दूसरों की इन्द्रिय का विषय बनता है। अतः परावाणी से अद्भुत पश्यन्ति के रूप में ज्ञेय होकर बैखरी में विखर कर दूसरों के लिए प्रस्तुत होता है।

जैसे वेद अनन्त हैं। ऐसा होने पर भी वेदत्रयी या चतुर्वेद ज्ञान कहा जाता है। उसी तरह आगमों की आत्मा एक होते हुए भी पार्थक्य लक्षित है। इसी लिए ही तन्त्र साधना की विशेषता है। जैसे बड़ी-बड़ी जलधाराएँ नदियों केरूप में परिणत होकर महासमुद्र में मिलती हैं। इसी तरह निगम और आगम कहो या फिर वैदिक या तान्त्रिक कहो तथा अन्य सभी धाराएँ भारतीय संस्कृति में मिलकर उसे विशालतर और विशालतम् बनाती हैं।

वैदिक एवं तन्त्र की विलक्षणता और धनिष्ठता—अति प्राचीन काल से यह प्रसिद्ध है कि तान्त्रिक साधना द्वारा बहुत से देवताओं ने भी सिद्धि प्राप्त की है। शाक्त साधना, जिसका लक्ष्य था, महाशक्ति जगदम्बा की माता के रूप में उपासना अथवा भगवान् शिव की उपासना। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्र, स्कन्द, वीरभद्र, लक्ष्मीश्वर, महाकाल, कामदेव, श्रीमाता के उपासक थे। बहुत से ऋषि महर्षि तान्त्रिक मार्ग के उपासक थे और यामल ग्रन्थों में बहुत से ऋषियों के नाम हैं। जैसे दुर्वासा, विष्णु, कश्यप, सनक, विश्वामित्र, गालब, याज्ञवल्क्य, गौतम, शातातप, आपस्तम्ब, भृगु, कात्यायन आदि। दुर्वासा ऋषि तन्त्र के प्रवर्तक के रूप में माने जाते हैं। वे श्रीमाता के उपासक थे। उनकी उपास्य षडक्षरी विद्या थी। काली सुधानिधि ग्रन्थ से यह पता चलता है कि ये काली के भी उपासक थे।

अगस्त्य ऋषि—वैसे तो वैदिक ऋषि थे, फिर भी शाक्ततन्त्रों में इनकी चर्चा है। लोपा मुद्रा इनकी धर्मपत्नी थी। वाल्मीकि रामायण में भी इनका परिचय प्राप्त होता है। इन्होंने रामचन्द्र जी को कुछ अक्षयशास्त्र दिये थे। चार अध्याओं

शक्ति सूत्र इन्हीं की रचना है। त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य खण्ड के अनुसार उच्च कोटि के वैदिक ऋषि होते हुए भी जब मेरुस्थित श्रीमाता के दर्शन कर सके, तब इन्होंने श्रीविद्या के उपासनार्थ श्री दंतसंहिता नामक ग्रन्थ की रचना की। इसके बाद इनके शिष्य सुमेधा ने 'त्रिपुरा रहस्य' की रचना की। दत्तात्रेय महाविद्या महाकालिका के उपासक थे।

नन्दिकेश्वर—मूलतः श्रीविद्या के उपासक नन्दिकेश्वर ने काशिका ग्रन्थ की रचना की। वे शिव के परमभक्त थे। उन्होंने परमशिव को समस्त तत्त्वों से परे और विश्व को 36 तत्त्वों से बना माना है। इन्होंने सांख्य के 25 तत्त्व तो माने ही हैं। उसके बाद शिव, शक्ति, ईश्वर प्राणादि पाँच और तीन गुण भी माने हैं; परन्तु प्रधान तत्त्व (प्रकृति) तथा गुणत्रय को पृथक् पृथक् माना है।

श्री गौड़ाचार्य एवं श्री शङ्कराचार्य—श्री गौड़पादाचार्य श्री शङ्कराचार्य के गुरु थे। गौड़पाद महान् वैदानिक हैं। ये माध्यमिक अद्वैतवाद में पारङ्गत होते हुए भी योगाचारों के अद्वैतवाद में भी निष्पात थे। ये समयाचार सम्मत तात्त्विकमत के पोषक थे। इनकी 'सुभगोदय स्तुति' प्राचीन स्तुतियों में प्रधान है। इनकी एक रचना "श्री विद्यारत्न सूत्र" है। देवी माहात्म्य की भाष्य रचना भी इन्होंने की। इसकी टीका का नाम चिदानन्द कमल है।

श्री नाथ शङ्कराचार्य तो सुप्रसिद्ध दार्शनिक हैं। वे अद्वैतवाद के समर्थक हैं। इनका पहला ग्रन्थ क्रमोत्तम है। इस ग्रन्थ में शङ्कर भी एक युग परम्परा दी हुई है। जिसके अनुसार आदि शिव से लेकर वशिष्ठ, शक्ति, पराशर, व्यास, शुकदेव, गौड़पाद, गोविन्दपाद और शङ्कर का क्रम है। इनका दूसरा ग्रन्थ है। "सुमुशिव पूजा पद्धति" इसमें मातङ्गीपूजा का वर्णन है। तीसरा ग्रन्थ "श्री विद्यार्णव" है। इसके अनुसार शंकर के 14 शिष्य थे। चौथा ग्रन्थ "भुवनेश्वरी रहस्य" है। इस सबसे प्रतीत होत है कि शङ्कर श्रीविद्या, मातङ्गी और भुवनेश्वरी के भी उपदेष्टा थे। श्री शङ्कर की तन्त्र रचनाओं में प्रपञ्चसार प्रधान है। इसके बाद सौन्दर्य लहरी आदि है। आनन्द लहरी की टीका में श्री शङ्करकृत एक क्रमस्तुति की चर्चा में एक प्रसिद्ध श्लोक के अनुसार मायाबीज ही भगवती पराशक्ति का नाम है और यहाँ पराशक्ति जगन्माता त्रिपुरा और त्रियोनिरूपा है।

तात्त्विक सम्प्रदाय और उनमें साम्य वैषम्य-तात्त्विक सम्प्रदायों का गम्भीरता पूर्वक चिन्तन करने पर भिन्न-भिन्न तन्त्र सम्प्रदायों में अचानक विषमता प्रतिभासित होती है; परन्तु उनमें निगृह रूप से तात्त्विक समानता है। संख्या में तात्त्विक सम्प्रदाय प्रायः तीन ही हैं—1-शैव, 2-शाक्त और 3-गाणपत्य। इन सम्प्रदायों में

अनेक अवान्तर भेद हैं। शैव तथा शैवशास्त्र मिश्रा सम्प्रदायों में कुछ के निम्नलिखित उल्लेखनीय नाम हैं। सिद्धान्त शैव, वीरशैव अथवा जङ्गमशैव, रौद्र, पाशुपत, कापालिक अथवा सोम, वाम भैरव, अद्वैतवादी दृष्टिकोण से शैव सम्प्रदाय में त्रिक अथवा प्रत्यभिज्ञा सपन्द आदि हैं। दश शिवागम और अठारह रुद्रागम तो सर्व प्रसिद्ध ही हैं। इनमें कुछ थोड़ा-सा भेद है। द्वैतमत में कोई कट्टरद्वैत, कोई द्वैताद्वैत तो कोई शुद्धाद्वैतवादी है। इनमें किसी को भेदवादी किसी को शिवसाम्यवादी तो किसी को शिवा संक्रान्तिवादी कहते हैं। किसी समय भारत में पाशुपत संस्कृति का बोलबाला था यह पाशुपत दर्शन पंचार्थवाद दर्शन तथा पंचार्थला कुलाम्नाय नाम से विख्यात था। इस विषयक राशीकर और कौण्डन्य भाष्य प्रसिद्ध है।

लावुलमत वास्तव में प्राचीन है। उसके बाद कापालिक सम्प्रदाय में भेद दिखाये हैं। उसमें कापालिक सम्प्रदाय भी है।

कापालिक सम्प्रदाय में मनुष्य के कपाल को शिर में धारण करना है। रहस्यबोध चन्द्रिका के अनुसार कापाल को ब्राह्मरन्ध्र माना जाता है। जिसमें अमृत भरा हुआ है।

इन साधकों के अनुसार कपालस्थित जलपान करना ब्रह्मरन्ध्र से अमृतपान करना है। बौद्ध आचार्य हरिवर्मा और असङ्ग के समय भी कापालिक के सम्प्रदाय विद्यमान थे। शाबर तन्त्र में 12 कापालिक गुरु और उनके 12 शिष्यों के नाम सहित वर्णन मिलते हैं। गुरुओं के नाम आदिनाथ अनादि, काल, अमिताभ, कराल, विकराल आदि शिष्यों के नाम नागर्जुन, जड़भारत, हरिश्चन्द्र चर्पट आदि। पुराणों कापालिक मत के प्रवर्तक धनद या कुबेर का उल्लेख है।

प्राचीन काल में शक्तों में भी कौलाचार और समयाचार का भेद विद्यमान है। कौलाचार सम्प्रदाय में कौलों में पूर्वकौल और उत्तरकौल में भेद विद्यमान था। पूर्वकौल मत में सदा शक्ति की ही प्रधानता स्वीकृत है। शक्ति कभी खाली नहीं रहती। शिवतत्व रूप में बदल जाते हैं, परन्तु शक्ति तत्त्वातीत ही रहती है। रुद्रयामल के उत्तरतन्त्र होने का यही रहस्य है। पूर्व कौल शिव और शक्ति के मध्य शेष शेषिभाव है, ऐसा मानते हैं। शिव शेष है तथा शक्ति शेष को रखने वाली है। जब शक्ति कार्यात्मक समग्र प्रपञ्च का अपने में आरोपित करती है तो उसका नाम होता है—कारण और उसका पारिभाषिक नाम आधार कुण्डलिनी है। कुण्डलिनी के जागने पर शक्ति शेष नहीं रहती। तत्त्वरूप में सदा शिव परिणत हो जाते हैं और शक्ति तत्त्वातीत ही रहती है।

कौलमत—कौलमत शक्ति की पूजा से सम्बन्धित है। कौलमत में ही

साधक साधना के चरम उत्कर्ष को प्राप्त करता है। कौलानुयायियों के अनुसार तपस्या मन्त्रसाधना आदि से चित्त शुद्धि होने पर ही कौलज्ञान धारण करने की मनुष्य में योग्यता आती है। साथ ही उसमें सिद्ध गुरु का होना अत्यन्त आवश्यक है।

पुराकृतपोदानं यज्ञतीर्थजपत्रतैः ।

शुद्धचित्तस्य शान्तस्य धर्मिणो गुरुसेविनः ॥

अति गुप्तस्य भक्तस्य कौलज्ञानं प्रकाशते ।

कौलमत तन्त्र साहित्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण साधनातन्त्र है। विज्ञान भैरव की टीका के अनुसार वेदादि से परम शैवतन्त्र है। शैव से वाम श्रेष्ठ है। वाम से दक्षिण श्रेष्ठ, दक्षिण से श्रेष्ठतर कौल।

साधन श्रेष्ठ और कौल साधन से श्रेष्ठ कोई भी नहीं है, किन्तु कुछ ग्रन्थों में इसकी निन्दा की गई है। जैसे कि 'शुभागम पञ्चक' के अन्तर्गत सनकुमार संहिता में कौलक क्षणिक दिगम्बर और वामक आदि के सम्प्रदाय समान माये गये हैं।

विशाल भारत में किसी समय तन्त्रों का व्यापक विस्तार हुआ था। कादि मादि मत 56 प्रदेशों में प्रचलित थे। भारतवर्ष के बाहर भी इनका प्रचार हुआ। देवराज नाम से शिव की उपासना और विभिन्न प्रकार की शक्तियों की उपासना भारत से बाहर जाकर प्रचलित हुई। इन शक्ति रूप देवियों के नाम हैं—भगवती, महादेवी, उमा, पार्वती, महाकाली, महिषमर्दिनी, पाशुपत भैरव आदि आदि चीनी भाषा में लिखित प्राचीन इतिहासों से पूर्ण विवरण जाना जा सकता है।

भले ही कौल साधना की लोगों ने आलोचना की हो; परन्तु आजकल शक्ति के उपासकों की अधिक संख्या है; क्योंकि शक्ति (प्रकृति) इसे (Nature) कहा जाता है, वह साक्षात् है। उसके सौम्य एवं उग्ररूप से समस्त जनसमुदाय परिचित है। इसलिए तो सर्वत्र प्रकृति के सौम्यवातावरण में शक्तिपीठों की स्थापना की गई है। सर्वत्र विद्यापीठ तन्त्रपीठ और मन्त्रपीठ स्थापित हैं। कामकोटि, जालंधर, पूर्णागिरि तथा उड्ढीयान के विषय में लोग जानते हैं। कामहृद के साथ मत्स्येन्द्रनाथ का सम्बन्ध था। जालन्धर पीठ के साथ अभिनवगुप्त के गुरु शम्भुनाथ का सम्बन्ध था, जो आजकल ज्योतिलिङ्ग का स्थान माना जाता है। विभिन्न तान्त्रिक विद्याओं की साधना इन पीठों में होती थी। बाद में बौद्धों द्वारा नालंदा, विक्रमशिला, उदन्तपुरी आदि में इन प्राचीन पीठों का अनुवर्तन हुआ। तक्षशिला का तो नाम सर्वत्र प्रसिद्ध ही है। सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध पीठ है, जिनका विस्तृत वर्णन तन्त्र साहित्य में उपलब्ध होता है। पीठ का तात्पर्य है—जहाँ

पर शक्ति जागृत है। जहाँ महत्त्व (बुद्धि) अहंकार (अहंतत्व) मन चित्त आदि का विषय अलिङ्ग परमतत्त्वज्योति स्वरूप है। इस प्रकार ये जो शक्ति के बाह्य अंग कहे गये हैं। इन्हीं आडम्बरों पर यह संस्कृति टिकी हुई नहीं है। इसका महत्त्व तो आत्मदर्शन में है। आगमशास्त्र में यह स्पष्ट निर्देश है कि आत्मा का स्वरूप नित्य शुद्ध है। उस स्वरूप को देखना होगा तथा उस नित्य शुद्ध स्वरूप का देखना ही आत्मतत्त्व को जागृत करना है। इसी आधार पर तन्न संस्कृति यह स्पष्ट घोषणा करती है कि मनुष्य को जगना चाहिए, सोते रहने से काम नहीं चलने वाला है।

॥प्रबुद्धः सर्वदा तिष्ठेत्॥

मनुष्य के जीवन का लक्ष्य पूर्णता को प्राप्त करना है। उसके लिये सबसे आवश्यक है, वह अनादि निद्रा से जागे और उसके बाद आत्मा के क्रमिक ऊर्ध्वमार्ग से परमशिव या परा शक्ति या परा सत्ता का साक्षात्कार करे ऐसा रुद्रयामल में कहा गया है।

तान्त्रिक विद्या में आत्मदर्शन—मनुष्य को जागना होगा; परन्तु यह जागना कोई सरल कार्य नहीं है। साधारणतः सभी आत्मायें सोयी हुई हैं। कोई भी ज्ञानी हो, ध्यानी हो, विद्वान् हो तथा अन्य भूमि के हों, उनमें आत्मविमर्श नहीं है। विशुद्ध स्थिति में रहने वाला आत्मा शिव से जुड़ा हुआ रहता है। अशुद्ध आत्मा सीमित रहता है। इसलिये वह 'अहम्' के रूप में खण्ड प्रमाता बनकर अभिव्यक्त है। खण्डप्रमाता के समक्ष अन्य सब प्रमेय तथा ग्राह्य रूप में प्रतीत होते हैं। आत्मा जो ग्रहण करने वाला है, वह जिस ग्रहण करने योग्य सत्ता को 'इदम्' यह है इस रूप में देखता है, वह चैतन्य उस ग्राह्य के लिये प्रयत्नशील रहता है। यह अहं रूप चैतन्य आत्मा का जब इस पिण्ड विशेष अर्थात् शरीर से सम्बन्ध रहता है, तब उस परम आत्मा के साथ अभिमान अपूर्ण होता है। जब वह पिण्डस्थ आत्मा पूर्णत्व को प्राप्त कर लेता है, तब अनाश्रित शिव से लेकर पृथ्वी पर्यन्त 36 तत्त्वों वाला सारा संसार उनका रूप या शरीर बन जाता है। अपूर्ण जो शरीरयुक्त अहम् है, वह पूर्ण हो जाता है, यही आत्मा का जागरण कहा जाता है। यहाँ अद्वैत साधना का रूप ही मुख्य है; क्योंकि आत्मा को परमात्मा या शिव में मिलाकर एक रूप करना अद्वैत उपासना है। जब तक यह जीव अनवच्छिन्न रहता है, तब तक निश्चित विशेष रूपों का ज्ञान नहीं रहता है। अर्थात् जब तक यह आत्मा जलाशय में महाकाश की भाँति उस परम चैतन्य से अवच्छिन्न ढका हुआ नहीं रहता, तब तक किसी विशेष रूप का भान नहीं होता। अतः वह अवस्था ग्राहक कोटि की है। अतः वह आत्मा उस परमसत्ता को ग्रहण करने वाली कोटि

में है। पूर्णता की प्रतीति अखण्ड सामान्य सत्ता के रूप में है। इस सामान्य महासत्ता की प्रतीति सविशेष और निर्विशेष इन दोनों रूपों में होती है। सर्वातीत रिक्त रूप 'भा' मात्र है तथा पूर्ण सर्वात्मा 'भा' है। यहाँ मात्र है और है, यही फर्क है। भा (प्रतीत होना) दोनों तरफ है। इस सामान्य सत्ता का भान ही 'स्वभाव' शब्द से जाना जाता है। वस्तुतः यह बहुतों के भीतर एक का अनुसन्धान है। जब आत्मा उस परमात्मा की ओर आकृष्ट होती है तो पहले तो उसे प्रतिनियत दर्शन होता था वह इस अवस्था में कर जाता है। अर्थात् निवृत्त हो जाता है और क्रमशः प्रतिबिम्ब रहित अर्थात् साक्षात् परम चैतन्य की ओर प्रगति होती जाती है।

जब तक कुण्डलिनी नहीं जगती, तब तक उस आत्मा का स्तर भेद बना रहता है। उस समय उसकी अस्मिता योग्यता के तारतम्यानुसार देह, प्राण, इन्द्रिय अथवा शून्य या माया में क्रिया करती रहती है। यहाँ यह स्मरणीय है कि 'अस्मि' भाव वास्तविक संवित् (ज्ञान) का है। ग्राहक चैतन्य का नहीं। पदों की संख्या बहुत है। इसका विस्तार भी अनाश्रित से लेकर पृथ्वी पर्यन्त है; परन्तु ये किसी पद के धर्म नहीं है, प्रत्युत चिति के धर्म है किसी भी पद में उसकी धारणा हो सकती है। धारणा का मतलब है—दृढ़ अभिनिवेश। इसकी प्रभा के कारण इच्छामात्र से क्रियान्त उद्घव हो सकता है।

शुद्ध आत्मा का अस्मिताजन्य जो अभिनिवेश है, वह शुद्ध अवस्था में विश्व में सर्वत्र ही विद्यमान है; क्योंकि आत्मा ग्राहक नहीं है। यह पहले ही कहा जा चुका है। बिन्दु देह पर्यन्त विभिन्न स्थितियों में यह सर्वत्र ही व्यापक है; किन्तु व्याप्य रहने पर ही सर्वत्र ही विकास नहीं है; क्योंकि यह भावना सापेक्ष है, जिसे कर्त्तव्य ईश्वर या स्वतन्त्रता कहा जाता है। वह अहन्ता का ही विकास है। इसे ही तान्त्रिक सिद्धण्ड चित्स्वरूपा कहते हैं। सभी सिद्धि अहन्ता से ही अनुप्राणित है।

तान्त्रिक योग या ज्ञान की साधना का लक्ष्य सोयी हुई आत्मा को जगाना है। सभी आत्मायें जिन्हें हम जानते हैं, वे सोयी हुई आत्माये हैं। इनकी दृष्टि से चित् और अचित् परस्पर विलक्षण हैं। सुप्त आत्मा की दृष्टि से ग्रहण करने वाला चित् रूप है और जिसे ग्रहण करना है, वह अचित् रूप है। सारा संसार अखण्ड प्रकाश लोक है और वह आत्मा के ही अन्दर स्थित है। फिर भी सुप्त आत्मायें उन्हें अपने बाहर समझती है। यह सुप्त आत्मा ही संसारी आत्मा है, जिसे हम चलते-फिरते देखते हैं।

जब आत्मा की निद्रा भंग होती है, तब स्थिति में परिवर्तन होने लगता है तथा यह परिवर्तन शुद्ध विद्या के प्रभाव से होता है। इन आत्माओं की उस समय

की अवस्था को बीच की अवस्था कहा जाता है। यह आधे सोये आधे जगे की अवस्था है। इन लोगों का संसार नहीं रहता; किन्तु संसार का संस्कार रह जाता है। इन लोगों की यह स्थिति न भव की और उद्द्वेष की कही जा सकती है। किसी अंश में यह पतञ्जलि दर्शन की सम्प्रज्ञात समाधि के समान है; क्योंकि उस दशा में अविवेक रह जाता है। इसके बाद शुद्ध चित का प्रकाश होता है। जो किसी अंश में पातञ्जलि मार्ग के विवेक ख्याति के समान है। यह बीच की अवस्था इसे जागृत अवस्था नहीं कहा जा सकता। इस अवस्था में कर्म का नाश हो जाता है। पतञ्जलि के अनुसार ये आत्मायें मुक्त कही जाती हैं; परन्तु तान्त्रिक दृष्टि से ये मुक्त नहीं कही जा सकती। तान्त्रिक परिभाषा में ये आत्मायें रुद्राणु नाम से कही जाती हैं और पशुकोटि में गिनी जाती है। इसके बाद यथार्थ जागरण की सूचना मिलती है, उस समय प्रमाता वस्तुतः जग जाता है। इस समय भेद और अभेद दोनों रहते हैं। 'मैं यह हूँ' इस रूप से जडावस्था का भान होता है। अर्थात् 'मैं जड़ हूँ।' ये सभी आत्मायें समस्त संसार को अपने शरीर के समान अनुभव करती हैं। यही अवस्था ईश्वर के अनुरूप है। इसी में विचित्रता है, जिसे अपनी अनुमति से जाना जा सकता है।

उससे जागरण होता है प्रकाश बढ़ता जाता है। उस प्रकाश के प्रभाव से यह जो है, उसे जानने वाला यथार्थ अनुभव का विषय अहं रूप आत्मस्वरूप में निमग्न होकर निमिषवत् प्रतीत होता है। इसके बाद भी यह अच्छी तरह जगी हुई अवस्था नहीं है। वैसे जगी हुई अवस्था से उत्कृष्ट अवश्य है। तान्त्रिक योगीण इन आत्माओं को उद्द्वीपी नाम से अभिहित करते हैं। ये सभी आत्मायें अभेद प्रतीति अथवा कैवल्य प्राप्ति के द्वारा अहमात्मक स्वरूप में निमग्न रहती हैं। यह भी इदन्ता रहती है; परन्तु यह इदन्ता अहन्ता से आच्छादित रहती है, जिसके कारण अस्फुट रहती है। इस अवस्था को किसी रूप में सदाशिव के अनुरूप माना जा सकता है।

उन्मेष या निमेषावस्था—तन्त्रमार्ग उपर्युक्त लम्बे रास्ते को पार करने के बाद असली पूर्णता आती है, लेकिन वह स्थिर नहीं रहती; क्योंकि कुछ समय तक उन्मेष, निमेष अर्थात् कभी जगना, कभी सोना का व्यापार चलता रहता है; परन्तु जिस समय स्थिति ईश्वर के समान रहती है, उस समय उन्मेष रहता है और जब स्थिति सदाशिव के समान रहती है, उस समय निमेष रहता है। इन दोनों स्थितियों में महाप्रकाश वर्तमान रहता है। उन्मेष में विश्व की प्रतीति रहती है, निमेष में नहीं रहती; परन्तु दोनों में प्रकाशात्मकरूप रहता है। उन्मेष निमेष के बाद पूर्णता प्राप्त होती है।

उन्मनी अवस्था—पूर्णता कभी स्थायी नहीं होती; क्योंकि उसके साथ सदा मन रहता है। इसे ही उन्मनी अवस्था कहते हैं, जब मन साथ में रहता है, उसे उन्मेष अवस्था कहते हैं, जब मन निमग्न हो जाता है, उसे निमेष अवस्था कहते हैं। इस उन्मेष और निमेष से जब मन थक जाता है, तब उन्मनी अवस्था प्रकट होती है, जिसके बाद पूर्णता सिद्ध हो जाता है; परन्तु यहाँ यह याद रखना होगा कि तत्त्व और अर्थ दोनों में से किसी एक का सहारा लेके सिद्धि हो सकती है। सुधाकर मालवीय की भूमिका के अनुसार तत्त्वमूलक सिद्धि दो प्रकार की है—1-परा, 2-अपरा। पातञ्जल योग दर्शन के अनुसार तीन तत्त्वों के आधार पर सिद्धियों का विवरण मिलता है। अर्थ विशेष में आत्मभावना करके योगी तद्रूप होते हैं और उस कार्य का सम्पादन करते हैं। जो देवता जिस अर्थ का सम्पादन करता है, योगी उस देवभाव में अहंभाव करके उस अर्थ का सम्पादन उस देवता से कर लेता है। इसका तात्पर्य हुआ कि किसी तत्त्व में अहन्ता का अभिनिवेश करने पर उसके अनुरूप सिद्धि का उदय हो सकता है। माया पर्यन्त 31 तत्त्वों का अवलम्बन करके इसी प्रकार की सिद्धियाँ की जाती हैं। इसका दूसरा नाम गुहासिद्धि है। गुहा माया का ही पर्याय है। मायातीत शुद्ध विद्या अर्थात् सरस्वती का आश्रय करके जिन सिद्धियों का उदय होता है, उनका नाम तत्त्वमूलक परासिद्धि है, लेकिन कार्यों की सिद्धि के लिये अपरा सिद्धियाँ हैं।

ये परा और अपरा सिद्धियाँ खण्ड सिद्धियाँ हैं, महासिद्धि कोई और ही महासिद्धि सबसे उत्कृष्ट है। इसके लिये सकलीकरण की स्थिति से गुजरना पड़ता है। सकलीकरण की अवस्था में पहले योगी को भीषण आग का अनुभव होता है। उसके बाद शान्ति से सनी हुई शीतलता की अनुभूति होती है। भीषण आग योगी के समस्त पाशों को जला देती है। उस समय षडध्वजा का दाह होता है। उसके बाद अमृत से सिद्धित जैसी शीतलता का अनुभव होता है। इस समय योगी अपने इष्ट देवता का साक्षात्कार करता है। उस समय योगी समस्त संसार का अनुग्राही हो जाता है। इसी का नाम पूर्णाभिषेक है। इसके बाद वह और भी आगे बढ़ता है, तब उसमें पूर्ण ख्याति का उदय होता है, उसी का नाम शिवत्व या परमशिव की अवस्था है। यही वास्तविक पूर्णता है। उसी समय योगी को भुवन रचना के अधिकार की प्राप्ति होती है।

बौद्धशास्त्र में सुखावती की रचना अमिताभ बुद्ध द्वारा हुई थी, विश्वामित्र आदि जगद् रचना विवरण प्रकार भी शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं। अतः तन्त्र संस्कृति का लक्ष्य उपर्युक्त पूर्णता को प्राप्त करना है, केवल लौकिक सिद्धि प्राप्त करना नहीं भू० शु०-२

है; परन्तु परमात्मा की भाँति सर्वशक्तिमत्ता प्राप्ति है। अतः तान्त्रिक संस्कृति का अवदान तुच्छ नहीं समझा जा सकता।

तन्त्र साधना का व्यावहारिक लाभ—तन्त्र साधना से आध्यात्मिक लाभ होता है। मानव कुण्डलिनी जागरण कर मूलाधार चक्र जहाँ से सुषुम्णा नाड़ी का निचला छोर है, जो लिङ्ग और गुदा के मध्य का स्थान है, उस चक्र का भेदन कर लिङ्ग के ऊपर स्वाधिष्ठान चक्र में पहुँचती है, उसका भेद कर नाभि के नीचे मणिपूरक चक्र का भेद करती हुई हृदय के पास पसलियों के बीच में अनाहत चक्र में पहुँचकर उसको भी तोड़ती है, उसके बाद कण्ठगहर स्थित विशुद्धि चक्र का भेदन करती हुई मस्तिष्क के अत्यन्त ऊपरी भाग में स्थित सहस्रार चक्र में पहुँचती है, वहाँ उसे शिव के साथ आहाद प्राप्त होता है, वही परावस्था कही जाती है, वही मोक्ष का कारण है।

अब यह उपर्युक्त प्रकार की मोक्ष किसको प्राप्त हुई इसका पुष्ट प्रमाण तो कहीं भी उपलब्ध नहीं है। वैसे कुछ व्यक्तियों द्वारा ऐसे कहते हुए सुना है कि ऐसे मनुष्य पर्वतों की कन्दराओं में पाये गये हैं, जिनकी आयु असीमित है। अब उन एक दूसरे की सुनकर कहने वाले व्यक्तियों के उस कथन में कितनी सत्यता है, उसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। कुछ कथा कहनियों में ऐसे वर्णन प्राप्त हो जाते हैं, जिसे कि बुद्धिमान् व्यक्ति की बुद्धि विश्वास करने के लिये विवश हो जाती है। जैसा कि अम्बिकादत्त व्यास ने शिवराज विजय नामक उपन्यास में एक दिव्य मुनि की चर्चा की है, जिनकी समाधि विक्रमादित्य के राज्यकाल के बाद औरंगजेब के राज्यकाल में खुली है अर्थात् लगभग 1300 वर्ष बाद तो उनकी समाधि खुली, तब उनकी आयु कितनी रही होगी। इसमें कहाँ तक सत्यता है। ईश्वर ही जानते होंगे। वैसे भी कवियों का तो काम ही कल्पनायें करना है। जैसा कि महाकवि कालिदास ने राजा दुष्यन्त के चरित्र को बचाने के लिये एक कैसी मनगणन्त कल्पना की, वह है—दुर्वासा ऋषि के शाप द्वारा दुष्यन्त का शकुन्तला को भूलना, शचीतीर्थ पर अंगूठी का गिरना, फिर मछली द्वारा अँगूठी का निगलना, मछुआरे द्वारा उसी मछली को पकड़ना, मछली के पेट से अंगूठी का मिलना, फिर उस पर राजा दुष्यन्त का नाम देखकर राजदरबार में ले जाना और राजा द्वारा शकुन्तला की स्मृति होना ये सभी प्रसङ्ग काल्पनिक हैं तथा नायक के चरित्र को बचाने के लिए कवि द्वारा गढ़े गये हैं। अतः काव्य को इतिहास मान लेना कदापि उचित नहीं है। अतः तन्त्र साहित्य में कहा गया तन्त्र विद्या से अणिमा आदि आठ सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। अष्टाङ्ग योग द्वारा कुण्डलिनी को जगाकर

षट्चक्र का भेदन करता हुआ साधक सहस्रार चक्र में जाकर साक्षात् शिव का दर्शन कर शिवमय हो जाता है। वहाँ उसे परमानन्द की प्राप्ति होती है। फिर वह औंघड़ हो जाता है, जिसे अवधूत कहा गया है। अध्यात्म जगत् में यह नाम अनेकों बार सुनने को मिला है; परन्तु जो व्यक्ति अवधूत बनना चाहता है, उसे फालतू विचारों को हटाना होगा। धीरे-धीरे स्थिति ऐसी आयेगी कि मनुष्य ध्यान की अवस्था में चला जायेगा। उसे ही समाधि कहा जायेगा। आज कल कुछ साधुगण शरीर पर राख लगाकर स्वयं को अवधूत कहते हैं; परन्तु क्या वे अवधूत हैं? अवधूत तो एक शिशु के समान अवस्था है, जिस अवस्था में सब प्रकार से आनन्द ही आनन्द की अनुभूति है। ऐसा व्यक्ति अपने मन को पूरी तरह छोड़ देता है। ऐसे व्यक्ति की शिशु की तरह देखभाल करनी है। यह एक अद्भुत स्थिति है। मगर आज उसकी देखभाल के लिये कहाँ से लोग लायेंगे। आज कल लोग समझेंगे कि यह पागल हो गया है और फिर पागलखाने में डाल दिया जायेगा। अतः ऐसी स्थिति में ब्रह्म का साक्षात्कार माना जाता है। ऐसा व्यक्ति देश दुनियां से अलग हो जाता है। अतः ऐसा अवधूत बनने से क्या लाभ, जो देश दुनियां से अलग हो गया हो; जो किसी का कल्याण न कर सके, अपितु दूसरों के लिए बोझ बनकर रह जाये। मैं मानता हूँ, ऐसे अवधूत अवश्य होंगे, परन्तु मैं उन्हें स्वार्थी मानता हूँ; क्योंकि इस संसार में जन्म लेकर जिसने अपने जीवन के उद्देश्य को पूरा नहीं किया, उसका जन्म लेना व्यर्थ है। जीवन का उद्देश्य—ईश्वर द्वारा दिये गये कार्य को ईमानदारी और निष्पक्षता एवं कुशलता के साथ पूरा करना है; क्योंकि परमपिता परमेश्वर ने प्रत्येक जीव को इस धरती पर कुछ कार्य देकर भेजा है। तदनुसार ही कोई राजा बनता है, कोई मन्त्री बनता है, कोई न्यायाधीश बनता है, कोई शिक्षक बनता है। कोई किसान, कोई व्यापारी, कोई डॉक्टर और कोई इंजीनियर बनता है। अतः उसका सबसे बड़ा धर्म है कि वह अपने ईश्वर प्रदत्त कार्य का निर्वाह ईमानदारी और कुशलता पूर्वक करे। इसीलिये तो युद्ध क्षेत्र में युद्ध रूपी कर्म से विमुख अर्जुन को यह उपदेश दिया है कि हे अर्जुन! तुमने इस युद्धरूप कर्म का निश्चय किया है। अतः इस कर्म को कीजिये इसका फल क्या होगा? इसका विचार नहीं करना है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुभूमासङ्गस्त्वकर्मणि॥।

युद्ध न करना कर्म में असङ्ग होगा, जो नहीं होना चाहिये; क्योंकि कर्मों में कुशलता ही सबसे बड़ा योग है। अतः मानव को ऊपर वाले ने जो भी कर्म

देकर भेजा है, उसे ही कुशलता, निष्पक्षता और ईमानदारी के साथ निवाह करना ही सबसे बड़ा योग है। मन्दिर में बैठकर पूजा करना, कथा भागवत सुनना, गीता रामायण का पाठ करना, रोज हजार एक लाख बार किसी भी देवता या ईश्वर के नाम का जाप करना, कर्म नहीं है। नित्य पूजा, पाठ, जप, तप, ध्यान करें। गीता का पाठ करें और न्याय देने में अपराधी को रिश्त लेकर मुक्त करें और निर्दोष को सजा दें, यह धर्म नहीं अधर्म है। यह कर्मयोग कोई सामान्य नहीं है, इसका पालन करना तलवार की धार पर चलना है। जैसे अर्जुन अपनों को देखकर कर्मविमुख होना चाह रहा था, वैसे अपनों के लिये भी कर्मयोग से विमुख नहीं होना है। अगर अपना पुत्र ही अपराधी है तो उसे भी उचित दण्ड देना ही है। जहाँ तक पूजा पाठ जप तप की बात है तो मेरी दृष्टि में कर्महीन व्यक्ति के लिये यह सब पाप है। व्यावहारिक दृष्टि से भी सोचिये कि आप अपने माता-पिता अथवा गुरु का नाम ले लेकर जाप करें और उनकी आज्ञा का पालन न करें वे जिस कार्य को करने का कहें उसे न करें तो क्या वे माता-पिता या गुरु आप से प्रसन्न होंगे, आपको दुआएँ देंगे, कदापि नहीं। क्या वे बार-बार नाम लेकर जपने से चिढ़ेंगे नहीं, इसी तरह ये समझिये कि अपने कर्म को कुशलता, ईमानदारी और निष्पक्षता के साथ न करने वाले व्यक्ति पर ईश्वर खुदा गॉड कभी प्रसन्न नहीं रहेगा। ऐसा व्यक्ति जो अपने कर्म का ईमानदारी के साथ निवाह नहीं करता है और रोज सहस्रों बार नाम लेकर जप करता है, वह ऊपर वाले की खिल्ली उड़ाता है। मजाक करता है, वह उसी तरह जैसे कि एक निकम्मा बेटा अपने बाप का बार-बार नाम लेकर उसे चिढ़ाता हो; परन्तु बाप तो बेटे को माफ कर भी देगा; परन्तु ऊपर वाला कभी माफ नहीं करता है, वह उसे अवश्य फल देता है। इसीलिये तो कहा गया है कि—

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्मशुभाशुभम्।

अर्थात् किये गये शुभ और अशुभ कर्म का फल अवश्य भोगना होगा वह इस जन्म में अथवा परजन्म में यही हमारे शास्त्रां में पुनर्जन्म का सिद्धान्त है; परन्तु अभी तक विज्ञान की कसौटी पर यह खरा नहीं उतरा है। इसीलिये रिश्त लेकर अपराधियों की वकालत करने वाले विद्वान् वकील, विना पढ़ाये ही वेतन लेने वाले शिक्षक, सीमा से अधिक फीस लेकर यहाँ तक पेट फाड़कर पैसा माँगने वाले और सामान्यतया शिशु को जन्म देने वाली अबला का भी पैसों के लिये पेट फाड़ने वाले भगवान् के रूप वाले चिकित्सक क्या कभी क्षम्य होंगे। उन्हें तो

अपने कुकर्मों का फल अवश्य भोगना है। पैसा ही सबकुछ नहीं है, जीवन में शान्ति का भी कुछ मूल्य है।

वे यह सब क्यों कर रहे हैं इसका कारण है कि उन्हें कोई भय नहीं है, वे पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं करते; परन्तु वे यह जान लें कि यह पुनर्जन्म मिथ्या नहीं है। यदि जीव का पुनः दूसरे शरीर में जन्म लेना विज्ञानसम्मत नहीं है तो यह तो मानना पड़ेगा कि महाभारत में कहा गया है कि “पिता वै जायते पुत्रः” अर्थात् पिता ही पुत्र के रूप में जन्म लेता है। यह तो विज्ञान सम्मत है तथा जब यह विज्ञानसम्मत है तो यह भी मानना पड़ेगा कि पिता के कुकर्मों का फल उसकी सन्तान को अवश्य भोगना है। वह पुत्र के रूप में, पोता के रूप में अथवा परपोता आदि केरूप में भोगना ही है। आप कितना ही अर्जित सम्पत्ति धन छोड़ के चले जाइये, यदि वह सम्पत्ति कुकर्मों से अर्जित की हुई है अवश्य किसी पीढ़ी में नाश को प्राप्त होगी। आपकी सन्तति भीख मांगेगी जैसे कि आज मुगल शासकों की सन्तति का हाल है आगरा ताजमहल के पास झोपड़ियों में रह रहे हैं। इसलिये “योगः कर्मसुकौशलम्” कर्मों में कुशलता ही योग है, इसे अपनाइये। अगर अपनी सात पीढ़ी तक सन्तान को सुखी एवं समृद्धि रखना चाहते हैं तो इस कर्मयोग को अपने जीवन का लक्ष्य बनाइये आत्मा को परमात्मा से मिलाने वाला वास्तविक योग यही है। यह व्यष्टिरूप जो आपकी एक आत्मा है, उसे समष्टि रूप ब्रह्म में मिलाने का यही साधन है। समष्टि का अर्थ है आत्माओं का समूह अर्थात् परमात्मा तथा जो व्यक्ति अपने शुभकर्मों से जन-जन की आत्माओं में निवास करता है, वही समष्टि ब्रह्म में समा जाता है, वही है—व्यावहारिक मुक्ति; क्योंकि उस व्यक्ति की अशुभ कर्मों से मुक्ति मिल जाती है। अतः अशुभकर्मों से मुक्ति ही वास्तविक मुक्ति है।

जितने भी तन्व एवं दर्शन ग्रन्थ हैं, उनका एक आध्यात्मिक पक्ष है, दूसरा व्यवहारिक पक्ष है। सांख्य दर्शन पूर्णतः वैज्ञानिक दर्शन है, जो सृष्टि प्रक्रिया को बताता है। वैशेषिक भी उसी का अनुयायी है। पतञ्जलि का योगदर्शन मेरे विचार से कर्मयोग का सहयोगी दर्शन है। यह पूर्णतः व्यावहारिक दर्शन है। इसमें कर्मयोग को पूर्णतः सफल करने की प्रक्रिया है। यह एक ऐसा महामन्त्र है कि इसके द्वारा मानव जो भी बनना चाहे बन सकता है; क्योंकि किसी भी जटिल से जटिल कार्य में साफल्य सफलता का कारण यह समाधि ही है। समाधिस्थ हो जाने पर उस परमब्रह्म (परमात्मा) में आत्मा ने मिलकर परमानन्द सुख को प्राप्त किया या नहीं यह तो संशयास्पद है; परन्तु कर्मक्षेत्र में यह समाधि व्यक्ति के

परमलक्ष्य को अवश्य प्राप्त करा सकती है। प्रत्येक कार्य समाधि द्वारा ही तो होता है। जरा सी समाधिभंग हुई कि कोई न कोई दुर्घटना अवश्यम्भावी है। समाधि भंग होने पर रेल चालक कितनों की जान ले सकता है। सब कार्य समाधि से ही चलते हैं। यह समाधि मनुष्य को ऊँचाई के किसी भी स्तर तक पहुँचा सकती है; परन्तु यह समाधि इतनी सरल नहीं है समाधिस्थ होना अर्थात् पूरी तरह ध्यानपूर्वक किसी कार्य का निर्वाह इतना आसान नहीं है। इसके लिये मनुष्य को आठ सोपानों पर होकर गुजरना होता है। ये सोपान हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। यम पाँच प्रकार का है—1. अहिंसा—हत्या न करना, अतः केवल हत्या न करना ही अहिंसा नहीं है, अपितु मन, वाणी और कर्म से किसी को दुःखी न करना भी अहिंसा है, जो समाधि के लिये आवश्यक है क्या हत्या करने वाला कभी समाधिस्थ हो सकता है, उसे तो भय रहेगा कि कहीं पकड़ा न जाऊँ। दूसरा यम है—सत्य बोलना।

अतः सत्य तो एक ऐसा मूलमन्त्र है कि सत्य बोलने वाला आदमी कभी कोई अशुभ कार्य कर ही नहीं सकता। तीसरा है अस्तेय—चोरी न करना, जो समाधि के लिये आवश्यक है, क्या चोर कभी समाधिस्थ हो सकता है? उसे तो भय रहेगा कि कहीं पकड़ा न जाऊँ। चौथा है—ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य का अर्थ है—काम को वश में रखकर संयमपूर्वक कार्य करना, क्या नारी चिन्तन समाधि लगने देगा? पाँचवा अपरिग्रह अर्थात् धन का लालच न होना। ये सभी समाधि के लिये आवश्यक हैं तथा ये पाँचों यम समाजव्यवस्थापरक हैं।

इनके पालन से सामाजिकव्यवस्था बनी रहेगी। दूसरा नियम भी पाँच प्रकार का है। यह अपने शरीर को शुद्ध रखने के लिये है। इसमें पहला है—शौच—जो दन्तधावन स्नानादि से अपने शरीर को पवित्र रखना है। दूसरा है—सन्तोष अर्थात् जो भी है, उसी में संतोष करना। तीसरा नियम तप—तपस्या करना। मेरे विचार से कठोर श्रम ही तप है; क्योंकि श्रम ही सफलता की कुंजी है। चौथा नियम है—स्वाध्याय—स्वयं अध्ययन करना। पाँचवाँ है—ईश्वर प्रणिधान अर्थात् सब कार्यों की सफलता को ईश्वर पर छोड़ देना चाहिये। योग का तीसरा अंग है—आसन; क्योंकि “शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्” अर्थात् महाकवि कालिदास के अनुसार ही शरीर ही धर्म का पहला साधन है। इसीलिए शरीर स्वस्थ रखने के लिये अनेकों आसनों को बताया है। चौथा योग का अंग है प्राणायाम—प्राणायाम का अर्थ है—श्वास निःश्वास का व्यायाम करना। ये तीन प्रकार के हैं—पूरक, कुम्भक और रेचक। पूरक है श्वास को अन्दर खींचकर रोकना। कुम्भक

है—श्वास को अन्दर बीच में स्थिर करना तथा रेचक है—श्वास को बाहर निकालकर रोकना। ये भी अनेकों प्रकार की क्रियायें इन क्रियाओं से श्वास की गति कम होती है। ज्ञात हो कि प्रत्येक जीव को निश्चित श्वासें देकर भेजा है। जिसकी श्वास की गति कम है, वह अधिक समय तक जीता है। जैसे—कछुआ 1 मिनट में तीन चार श्वास लेता है, उसकी आयु सबसे अधिक है। मनुष्य एक मिनट में 14 श्वास लेता है। पशु एक मिनट में लगभग 50-60 श्वास लेता है। अतः कुत्ता तथा पशु की आयु मनुष्य की आयु की चौथाई होती है। मनुष्य की आयु 100 वर्ष है। वशर्ते कि वह संयम से रहे तथा मनुष्य प्राणायाम से अपनी श्वास की गति को कम करे तो शत वर्ष तथा शताधिक वर्ष भी जीवित रह सकता है। अतः प्राणायाम की शारीरिक स्वास्थ्य में अहं भूमिका है। उसके बाद है प्रत्याहार, जिसमें इन्द्रियों को वश में रखना है; क्योंकि किसी सुन्दरी को देखकर किसी सुन्दर ध्वनि को सुनकर आपका ध्यान भटक गया तो लक्ष्य पर आप समाधिस्थ कैसे हो पायेंगे।

इन पांचों योगांगों के बाद जिस विषय की धारणा होगी उस पर अवश्य ध्यान लग जायेगा तो फिर उस विषय पर समाधि लगाना सुनिश्चित है। यह समाधि परलोक में कुछ प्रदान करे न करे; परन्तु इस लोक में मनुष्य को कुछ भी बना सकती है। एक विद्यार्थी इस समाधि द्वारा सफल प्रशासक, डॉक्टर, अभियन्ता, जज, नेता, अभिनेता, वकील, वैरिस्टर आदि कुछ भी बन सकता है तथा जो बन गया इस समाधि द्वारा समाज में परमप्रतिष्ठा प्राप्त कर ईश्वर नहीं तो ईश्वरतुल्य तो निश्चित ही बन सकता है। वह जन-जन की अरत्माओं में समाविष्ट होकर समष्टि ब्रह्म रूप बन सकेगा। वह सभी का पूजनीय हो जायेगा।

यह तो हुआ कर्म योग और अष्टांग का व्यावहारिक पक्ष। अब हम इन यौगिक क्रियाओं से अन्य क्या शारीरिक लाभ हो सकते हैं, यह बता रहा हूँ। रुद्रयामल तन्त्र की भूमिका में कथित शारीरिक लाभों को संक्षेप में यहाँ दिया जा रहा है।

प्राणायाम के प्रकार—प्राणायाम मूलतः तीन प्रकार के होते हैं—पूरक, रेचक और कुम्भक जिनके विषय में बताया जा चुका है।

प्राणायाम का शरीर पर प्रभाव—शरीर के अनेकों प्रकार के अंगों में तीन अंग प्रधान हैं—1-स्नायुजाल (Nervous System) 2-ग्रन्थिसमूह (Glandular System) 3-श्वासोपयोगी अंगसमूह (Respiratory System) रक्त प्रवाह अंगसमूह (Digestive System) साधारण तौर पर श्वास लेने में पेट की मांसपेशियां ऊपर-

नीचे होती रहती है, जिससे आंतों और गुर्दे में भी हलचल होती है तथा पूरक, रेचक और कुम्भक प्राणायाम में यह हलचल पूरी तरह होने लगती है, जिससे आंतों और गुर्दे की मालिश होती है, जिससे कहीं किसी प्रकार से जमा दूषित रक्त बाहर निकल जाता है और उस हलचल से आंतों और गुर्दे की मांसपेशियाँ मजबूत होती हैं। प्राणायाम में मुख्य क्रिया फेफड़ों की होती है। अतः प्राणायाम द्वारा फेफड़ों का भी संस्कार होता है। कार्बन डाई ऑक्साइड नामक दूषित गैस बाहर निकलती है। श्वास-प्रश्वास से पाचनशक्ति भी तीव्र हो जाती है; क्योंकि प्राणायाम में पेट और वक्षःस्थल के बीच के स्नायु (Diaphragm) और की मांसपेशियाँ बार-बार सिकुड़ते हैं और फूलते हैं, जिससे पाकोपयोगी अंगों की मालिश हो जाती है। फलतः अग्नि की मन्दता बढ़कोष्ठता दूर हो जाती है और जिगर में किसी प्रकार से जमा रक्त हट जाता है।

शरीर को अधिक से अधिक ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। अतः इसके लिये प्राणायाम से बढ़कर कोई साधन नहीं है। सामान्यतया श्वास प्रश्वास (प्राणायाम) न करने वाले लोगों के फेफड़ों के कुछ अंश काम करना छोड़ देते हैं। जिससे टी. बी. (राजयक्षमा) के भयंकर कीटाणु समाप्त हो जाते हैं। अतः श्वास सम्बन्धी रोगों से बचने का सबसे अच्छा साधन प्राणायाम है। प्राणायाम के कारण पाकोपयोगी, श्वासोपयोगी एवं मल को बाहर निकालने वाले अंगों की क्रिया ठीक होने से रक्त अच्छा बना रहेगा। यही रक्त विभक्त होकर शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों में पहुँच जायेगा। यह कार्य खास रूप से हृदय का है। अतः प्राणायाम के द्वारा उसके अधिक स्वस्थ हो जाने पर समस्त रक्तवाहक अंगसमूह अच्छी तरह से काम करने लगते हैं।

यही नहीं भस्त्रिका प्राणायाम (कपालभाति) से तो शरीर के अंगों की समस्त शिरायें हिल जाती हैं, जिससे शरीर के अन्दर के समस्त अंगों की मालिश हो जाती है, जिससे समस्त शरीर का आन्तरिक समूह पूर्ण स्वस्थ होना चाहिये। अतः कपालभाति बहुत ही लाभदायक प्राणायाम है। इससे नासिका द्वारा श्वास-प्रश्वास में नासिका मार्ग साफ़ और सुदृढ़ होता है तथा कण्ठ द्वारा ध्वनि करते हुए कपालभाति की जाये तो स्वर की शुद्धि होती है और उससे थाईराइड जैसे कण्ठ के रोग से मुक्ति मिलती है। भस्त्रिका प्राणायाम (कपालभाति) से रक्तगति में तीव्रता के कारण उत्तमरक्त पैदा होता है, जिससे ग्रन्थियों को उत्तम रक्त प्रचुर मात्रा में मिलने लगता है, जिससे वे अधिक स्वस्थ हो जाती है।

प्राणायाम का मस्तिष्क पर प्रभाव—सभी शरीर वैज्ञानिकों का यह

मत है कि सांस लेते समय दूषित रक्त मस्तिष्क से बह जाता है और शुद्ध रक्त हृदय से वहाँ पहुँचता है तथा प्राणायाम करते समय गहरी-गहरी सांसे लेने पर दूषित रक्त तेजी से बहकर प्रक्रिया द्वारा मल द्वारा बाहर हो जायेगा तो फिर शुद्ध रक्त मस्तिष्क को हृदय द्वारा प्रवाहित होना मस्तिष्क को शक्ति प्रदान करना है। उड्डीयान बन्ध से तो जितना अधिक शुद्ध रक्त मिलता, जितना कि अन्य किसी प्राणायाम से नहीं मिल सकता। प्राणायाम से तुरन्त बल और नवीनता प्राप्त होना वैज्ञानिक कारण है। प्राणायाम से समस्त अंगों में रक्त की गति बढ़ जाती है। अतः सब अंगों को स्वस्थ रखने में प्राणायाम सहायक होता है।

योग में कुम्भक करते समय मूल उड्डीयान और जालंधर तीन प्रकार के बंध करने का उपदेश दिया है। इन बंधों को एक बार में ही करने से पीठ और उसके अंदर मेरुदंड और उससे सम्बन्धित स्नायुओं का बहुत अच्छा व्यायाम हो जाता है। इसमें मांसपेशियाँ फूलती हैं और फिर सिमट जाती हैं, जिससे इन पेशियों तथा मेरुदंड और स्नायुओं में रक्त की गति बढ़ जाती है। स्नायुजाल को स्वस्थ रखने के लिये सबसे अच्छा प्राणायाम कपालभाति है।

कुछ शारीरोपयोगी बंध—यौगिक क्रियाओं में अनेकों प्रकार के बंध बताए गये हैं। जिनमें प्रमुख हैं। (1) मूल बंध (2) उड्डीयान बंध (3) जालंधर बंध (4) महाबंध।

(1) **मूल बंध**—मूल बंध गुदा एवं (मूत्रेन्द्रिय) के बीच के स्थान को बन्द करने का नाम मूल बंध है। बायें पैर की एड़ी को गुदा एवं लिङ्ग के बीच में अच्छी तरह से जमाकर दबाना है और नीचे जाने वाली अपान वायु को बल के साथ ऊपर की ओर खींचना है। इसमें सिद्धासन होना जरूरी है।

इसमें अपान वायु ऊपर की ओर जाकर प्राण वायु के साथ मिलती है। कुण्डलिनी शक्ति सीधी होकर ऊपर की ओर बढ़ती है, जिससे किसी भी कोष्ठ में रुकावट दूर होती है। पाचन शक्ति तेज होती है। वीर्य उध्वरितस् होता है। इससे अनेकों लाभ हैं। इसलिये इसे अवश्य करना चाहिये।

(2) **उड्डीयान बंध**—दोनों जंघाओं को मोड़कर पैरों के तलवों को परस्पर भिड़ाकर पेट के नीचे ऊपर के आठ अंगुल हिस्से को बलपूर्वक खींचकर रीढ़ के हड्डी से ऐसा लगा दें कि पेट के स्थान पर गङ्गा सा दिखने लगे। पेट को अंदर की ओर जितना अधिक खींचा जायेगा उतना ही ये बंध अच्छा होगा। इसमें प्राण पक्षी के समान सुषुम्णा की ओर उड़ने लगता है। इसलिए इसे उड्डीयान बंध कहा जाता है।

लाभ—प्राण वायु और वीर्य का ऊर्ध्वमुखी होना, पाचनशक्ति का बढ़ना और फेफड़े का शक्तिशाली होना इस बन्ध का लाभ है।

जालन्धर बन्ध—कण्ठ को सिकोड़कर मजबूती के साथ ठोड़ी को कण्ठ कूप लगाये सीना तना रहे तथा हृदय से ठोड़ी 4 अङ्गुल दूर रहे इसे स्वर सुधीर होता है तथा प्राण सुषुम्णा में प्रवेश करता है।

महाबन्ध—महाबन्ध के दो प्रकार हैं—पहला है कि बांये पैर की एड़ी को लिङ्ग और गुदा के बच में जमाये। जंघा के ऊपर दाहिने पैर को रखकर सीधा होकर जिस नासिका छिद्र से श्वास चल रहा हो उसी से पूरक प्राणायाम करके जालन्धर बन्ध लगाये, फिर मूलद्वार से वायु को ऊपर की ओर खींचकर मूलबन्ध लगाये मन को मध्य नाड़ी में लगाकर यथाशक्ति कुम्भक करें। उसके बाद दूसरी नासिका से धीरे-धीरे रेचक फिर श्वास का अनुलोम विलोम करें।

दूसरी विधि है पद्म अथवा सिद्धासनस्थ होकर लिङ्ग (योनि) और गुदा प्रवेश को सिकोड़कर अपान वायु को ऊपर की ओर खींचे और फिर उसे नाभि में रिथित समानवायु के साथ मिलाकर हृदयस्थ प्राणवायु को नीचे की ओर करके प्राण और अपान वायुओं के साथ नाभिस्थल पर दृढ़रूप से कुम्भक करें।

इससे प्राणवायु ऊपर की ओर होती है, जिससे वीर्य की शुद्धि होती है। इडा, पिङ्गला और सुषुम्णा का मिलन होने से बल की अपार वृद्धि होती है। इस प्रकार प्राणायाम शरीर को पूर्ण स्वस्थ रखकर आयु वृद्धि का मूल कारण है।

षट्कर्म और उनकी रोग निवारण में भूमिका—रुद्रयामल तन्त्र के चौबीसवें और पच्चीसवें पटल में नेती, दन्ती, धौती न्यौली और क्षालन पांच कर्म बताये हैं। इस संसार की जिस प्रकार तीन गुणों वाली प्रकृति उपादान कारण है। अतः तीन गुण वाली प्रकृति के कारण संसार के प्राणी भी शारीरिक तीन प्रकार के गुण वाले होते हैं, वे तीन गुण हैं—तीन धातु हैं—वात, पित्त और कफ। उनमें कुछ वात प्रधान होते हैं, कुछ प्रधान होते हैं तो कुछ पित्त प्रधान होते हैं। वात प्रधान लोगों के शरीर प्रायः जोड़ों के दर्दों से पीड़ित रहते हैं तथा शीघ्र रोगग्रस्त हो जाते हैं। कफ प्रधान प्राणियों का शरीर बहुत मांसल होता है तथा वे शीघ्र सर्दी खांसी बुखार से पीड़ित हो जाते हैं। पित्त प्रधान व्यक्ति पतले दुबले जरूर होते हैं; परन्तु वे बहुत कम बीमार होते हैं, उनके शरीर में रोग निरोधक क्षमता अधिक होती है। अतः इन विकारों से बचने के लिये हठयोग के प्रवर्तक ऋषियों ने षट्कर्म निश्चित किये हैं जो षट्कर्म कफ की वृद्धि को रोकने के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं; क्योंकि कफ की वृद्धि होने पर ही अनेकों रोग पैदा होते हैं। कफादि

दोष को हटाने के लिये प्राणायाम ही पर्याप्त है; परन्तु जब कफविकार सीमातीत हो गया हो, शरीर में मल भर गया हो उसे हटाने के लिये षट्कर्म की आवश्यकता होती है। इसीलिये हठयोगदीपिका में कहा गया है कि—

मेदःश्लेष्माधिकः पूर्वं षट्कर्मणि समाचरेत्।

अन्यस्तु नाचरेत्तानि दोषाणां समभावतः॥

अर्थात् जिस पुरुष को कफादि मल अधिक हो गया हो उसे प्राणायाम से पहले षट्कर्म करने चाहिये। ये षट्कर्म शरीर को शुद्ध करने वाले हैं; इसलिये इन्हें षट्शोधनकारक भी कहा गया है। कुछ लोगों के अनुसार इन्हें शरीर मल की अधिकता होने पर ही करना चाहिये। इनसे शरीर में कफादि की समाप्ति होने पर ही प्राणायाम करना चाहिये। कुछ विद्वानों के अनुसार इन्हें करता ही रहना चाहिये, ताकि कफादि दोष पैदा ही न हो सकें। हठयोगदीपिका में इन षट्कर्मों के नाम हैं—1-धौति, 2-वस्ति, 3-नेति, 4-नौलि, 5-कपालभाति और 6-त्राटक।

(1) धौतिकर्म—हठयोग दीपिका के अनुसार चार अंगुल चौड़े और पन्द्रह हाथ लम्बे कपड़े को गर्म जल में भिगोकर और फिर निचोड़कर निगलना है। आठ दश दिन में पूरा कपड़ा निगलने का अभ्यास हो जायेगा; परन्तु उसे गुरु द्वारा करना चाहिये।

चतुरझुलविस्तारं हस्तपञ्चदशायुतम्।
गुरुपदिष्टमार्गेण सिक्तं वस्त्रं शनैर्ग्रसेत्॥

—(हठयोगदीपिका)

इससे उस वस्त्र पर कफ और पेट के कुछ अन्य रंग-तिरंगे दूषित कण बाहर आ जायेंगे और उदर साफ हो जायेगा। यह उदर से लेकर कण्ठ तक को धोने का कार्य करता है, इसीलिये इसे धौतिकर्म कहा गया है। आजकल नली द्वारा इस क्रिया को किया जाता है। कैसी भी धौतिक्रिया हो उससे कफ, पित्त और रंग-बिरंगे पदार्थ बाहर गिरते हैं। इससे मन को शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त होती है।

(2) वस्तिकर्म—वस्ति को साफ करने वाले कर्म को वस्तिकर्म कहते हैं। वस्ति लिङ्ग और गुदा के बीच जो मूलाधार है, उससे ऊपर वस्ति का स्थान है, जिसे मलाशय कहा जाता है। इसका रंग लाल है और देवता गणेश हैं। “योगसार” पुस्तक में पुराने गुड़, त्रिफला और चीते की छाल की बनी गोली देकर अपानवायु को वश में करने को कहा गया है। फिर वस्तिकर्म करना बताया है। सीधे शब्दों में यों कहिये मलाशय को साफ करने की किया ही वस्तिकर्म है। वस्तिकर्म दो प्रकार का है—1-पवनवस्ति 2-जलवस्तिकर्म। नौली क्रिया द्वारा

अर्थात् पेट को घुमाने की क्रिया द्वारा अपान वायु को ऊपर खींचकर फिर मयूरासन से त्यागने को 'वस्तिकर्म' कहते हैं। जब पवनवस्ति सम्भव हो जाये, तब जलवस्ति क्रिया आसन हो जाती है; क्योंकि जल को खींचने का कारण पवन ही होता है। जब जल में डूबे हुए पेट से न्योली हो जाये, तब न्योली से जल ऊपर खिंच जायेगा। हठयोगदीपिका में कहा गया है कि "गुदा के मध्य में छः अंगुल लम्बी ज्ञांस की नली को रखें जिसका छेद कनिष्ठिका अंगुली को प्रवेश कराने के योग्य हो उसे धी अथवा तेल लगाकर सावधानी से चार अंगुल गुदा में प्रवेश करें और दो अंगुल बाहर रखें। फिर नाभि से ऊपर पानी आ जाये ऐसे टब में एड़ियों को नितम्बों से लगाकर पंजे के बल उस टब में बैठे अतः पानी नली में होकर वस्ति तक पहुँचेगा; क्योंकि पानी तो अपनी सतह पकड़ेगा ही। साथ ही जैसे घोड़ा संकोच विकोच करता है, उसी तरह अपानवायु को ऊपर की ओर खींचने का प्रयास करें। उसके बाद न्यौली क्रिया द्वारा पेट को पूरी तरह घुमाये। इससे मलाशय (वस्ति) से बदबूदार कुछ मल आम आदि बाहर आयेगा और मलाशय साफ हो जायेगा।

नाभिदघ्नजले पायौ न्यस्तनालोत्कटासनः।

आधाराकुंचनं कुर्यात् क्षालनं वस्तिकर्म तत्॥

—(हठयोगदीपिका)

वस्तिकर्म क्रिया प्रातःकाल खाली पेट करनी चाहिये। उसके बाद शीघ्र भोजन कर लेना चाहिये। यदि भोजन किया गया तो जो जल आंतों में शेष रह गया है, वह गन्दा जल रक्त बनकर रोग पैदा कर सकता है। भोजन कर लेने पर तो वह मूत्र द्वारा बाहर निकल जायेगा।

इस वस्तिक्रिया से पेट पूरी तरह साफ हो जाता है, जिसे गुल्म (पथरी), प्लीहा, जलोदर आदि रोग नहीं हो सकते हैं। यह वस्तिक्रिया पुरानी प्रक्रिया है। आज कल मलाशय को साफ करने के एक से एक अच्छे साधन बन चुके हैं। जैसे साबुन की बत्ती से वस्ति को साफ किया जाता है। इसमें नली द्वारा पर्याप्त करके पानी चढ़ाकर निकाला जाता है। इस क्रिया से बहुत अच्छी तरह वस्ति साफ हो जाती है।

यहाँ यह भी जान लेना चाहिये कि छोटे-छोटे जल जन्तुओं का नल द्वारा पेट में प्रवेश हो जाने का डर रहता है। अतएव नल के मुख पर महीन वस्त्र देकर आकुंचन करना चाहिये। अभ्यास के द्वारा किया हुआ यह वस्ति कर्म साधक के सात धातुओं, दसों इन्द्रियों और अन्तःकर्ण को प्रसन्न करता है। मुख पर

सात्त्विक कान्ति छा जाती है। पाचाकाग्नि तेज हो जाती है। वात, पित्त, कफ की वृद्धि अथवा कमी दोनों को नष्ट कर साधक साम्य रूप आरोग्यता को प्राप्त करता है। एक बात ध्यान देने की है कि वस्ति क्रिया करने वाले को पहले नेति, और धौत क्रिया करनी ही चाहिये। जिनको टी. बी., क्षय, संग्रहणी, नीचे रक्त पित्त का गिरना, भगन्दर, मलाशय और गुदा में शोथ, लगातार बुखार, आँतों की सन्त्रिपात, आँतों में धाव तथा कफ वृद्धि अथवा साँस के रोग हों, उनको वस्ति क्रिया नहीं करनी चाहिये। यह क्रिया नित्य करने की नहीं है। जब पखाना साफ न हो रहा हो। आम का विकार पैदा हो गया हो। रुक-रुक कर पखाना आता हो, ऐसी स्थिति में ही वस्तिक्रिया करनी चाहिये।

नौलि—हठयोग दीपिका के अनुसार कंधों को नवाये हुए अत्यन्त वेग के साथ जल भँवर के समान अपने पेट को दाँये से बाँये, बाँये से दाँये भागों से घुमाने वाली क्रिया को सिद्ध पुरुषों ने नौलि क्रिया कहा है।

अमन्दावर्तवेगेन तुन्दं सत्यापसव्यतः।
नतांसो भ्रामयेदेषा नौलिः सिद्धैः प्रचक्ष्यते॥

—(हठयोगप्रदीपिका)

जो सरलता से लगाया जा सके ऐसे आसन पर बैठकर शौच आदि से निवृत्त होकर जब पेट साफ हो गया हो, तब वायु को बाहर रोककर बिना देह हिलाये केवल पेट को बांयें से दांयें, दांयें से बांयें चलाना चाहिये। इससे लगातार कुछ दिन अभ्यास करने पर पेट की चर्बी कम हो जाती है; परन्तु जब तक प्रसीना न आ जाए, तब तक इस क्रिया को करना चाहिए। यदि समझ में ना आ रहा हो तो बाबा रामदेव को नौलि क्रिया करते देखना चाहिए। अभ्यास करते करते जब पेट के बीच में एक खम्भ सा खड़ा हो जाये, तब तक इसका अभ्यास करना चाहिये। मनोबल और प्रयासपूर्वक अभ्यास बढ़ाने से वह स्वयं दांये बांयें घूमने लगती है। इसी को चलाने से छाती के पास, कण्ठ पर और ललाट पर भी नाड़ियों का द्वन्द्व मालूम पड़ता है। एक बार न्यौली चल जानेपर चलती रहती है। पहले पहल चलाने पर दस्त ढीला होता है। हल्के पेट वाले की यह क्रिया एक माह में सफल हो जायेगी। जब तक आंत पीठ के अवयवों से अलग न हो जाय तब तक यह क्रिया करे; परन्तु अति नहीं होना चाहिये, सावधानीपूर्वक यह क्रिया करनी चाहिये अन्यथा उदर में आघात होकर कोई अन्य भयंकर रोग हो सकता है।

हठयोग दीपिका के अनुसार यह न्यौली मन्दाग्नि का शीघ्र दीपन और अन्न को पचाने का कार्य करती है; इसलिए सदा के लिए आनन्द पैदा करने वाली

है। यही नहीं यह क्रिया समस्त वात आदि दोषों का शोषण करती है। अतः यह न्यौली हठयोग की सभी क्रियाओं में उत्तम है।

मन्दाग्निसंदीपनपाचनादि संधापिकानन्दकरी सदैव।
अशेष दोषामयशोषणी च हठक्रियामौलिरियं च नौलिः॥
—(हठयोगदीपिका)

यही नहीं रुद्रयामल तन्त्र में तो यहाँ तक कह दिया गया है कि नेतली के योग्य आसन पर नेतली क्रिया करने से मनुष्य अधिक आयुवाला और सदैव निरोग रहता है।

नेतलीयोगमात्रेण	आसने	नेतलोपमः।
नेतलीसाधनादेव	चिरंजीवी	निरामयः॥

—(रुद्र० 35/22)

वस्तिकर्म में भी इसी न्यौली क्रिया की आवश्यकता होती है; क्योंकि वस्तिक्रिया में जो जल मलाशय में पहुँचता है, वह न्योलीक्रिया से मलाशय में घूम-घूम कर समस्त कफ आम और पित्त को बाहर निकाल देता है। अतः वस्तिकर्म में न्यौली भी आवश्यक है।

4-नेतिक्रिया—नेति दो प्रकार की होती है। जल नेति और सूत्र नेति। जल नेति नासिका के एक छेद से जल खींचकर दूसरे छेद से निकालने की क्रिया है। इसमें नासिका के एक छेद को अंगुलि से बन्द कर दूसरे छेद से जल खींचना चाहिये। फिर उसे दूसरे छेद से निकालना चाहिये। इसका सबसे अच्छा तरीका है कि एक पतली नली वाला बर्तन हो, जिसे वधना कहते हैं, उसमें जल भरकर नली को नाक के एक छिद्र में डालकर जल का बहाना चाहिये। धीरे-धीरे प्रयोग करने जल स्वयं दूसरे छिद्र से गिरने लगेगा। उसके दूसरे छिद्र में यही क्रिया करनी चाहिये। इससे शिर में झनझनाहट होगी। बाद में अभ्यास करते रहने पर यह झनझनाहट भी समाप्त हो जायेगी।

सूत्रनेति—धागे द्वारा की जाती है। इसमें एक मोम द्वारा चिकने धागे का नासिका के एक छिद्र को बन्द करके दूसरे छिद्र से धागे को सूतना (खींचना) होता है तथा जब वह धागा मुँह में आ जाये, तब धागे को दोनों तरफ पकड़कर धर्षण करना है। इससे नासिका की समस्त गन्दगी साफ हो जाती है; परन्तु यह क्रिया अधिक उचित नहीं है; क्योंकि धर्षण करने पर कहीं कोमल अंग धायल भी हो सकता है। सबसे अच्छी जलनेति क्रिया ही है।

जलनेति क्रिया को प्रतिदिन भी कर सकते हैं अथवा तीसरे दिन भी कर सकते हैं, जो भी हो यह क्रिया सर्वोत्तम क्रिया है।

हठयोगदीपिकाकार के अनुसार यह क्रिया कपाल को शुद्ध करती है। दिव्य दृष्टि देती है और कन्धे, भुजा और सिर की सन्धि के ऊपर के सारे रोगों को नेति शीघ्र नष्ट करती है।

कपालशोधिनी चैव दिव्यदृष्टिप्रदायिनी।
जत्रूर्ध्वजातरोगौदं नेतिराशु निहन्ति च॥

—(हठयोगदीपिका)

5-त्राटककर्म—पूरी तरह एकाग्रचित्त होकर मनुष्य सूक्ष्म लक्ष्य को, तब तक देखे जब तक कि आँसू न बहने लगें। मत्स्येन्द्रनाथ आदि आचार्यों ने इसे त्राटककर्म कहा है।

निरीक्षेत्रिश्वलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः।
अश्रुसम्पातपर्यन्तमाचार्यस्त्राटकं स्मृतम्॥

—(हठयोगदीपिका)

इसकी विधि है कि दीवार पर कहीं सरसों बराबर चिह्न कर दे उस पर दृष्टि को ठहराये। धीरे-धीरे अभ्यास करने पर चित्तसमाहित हो जाता है और दृष्टि में शक्ति आ जाती है। मेस्मिरेजम इसी प्रक्रिया पर आधारित है।

हठयोगदीपिका के अनुसार त्राटकक्रिया नेत्रोगों से मुक्ति दिलाने वाली है। आलस्य को शरीर में नहीं आने देती है तथा यह क्रिया संसार में गुप्त रखने वाले स्वर्ण की तरह गुप्त रखने योग्य है।

मोचनं नेत्रोगाणां तन्द्रादीनां कपाटकम्।
यत्नतस्त्राटकं गोप्यं यथाहाटकपेटकम्॥

—(हठयोगदीपिका)

6. क्षालन—षट्कर्म योग क्षालन का अर्थ है—नाड़ियों का प्रक्षालन (धोना) इसके विषय में रुद्रयामल तन्त्र में कहा या है कि ऊपर की ओर पैर करके नीचे अपने शिर का आसन बनावे। उसके बाद नीचे की ओर रहने वाले हाथ से जप करे यदि साधक मात्र तीन दिन तक मुण्डकासन कर सकता हो तो उसके शरीर सभी नाड़ियां वशीभूत हो जाती हैं, इसमें संशय नहीं है। नाड़ी क्षालन नामक योग से वह स्वयं मोक्ष का अधिकारी होता है।

ऊद्धर्वे मुण्डासनं कृत्वा अधोहस्ते जपं चरेत्।
यदि त्रिदिनमाकर्तुं समर्थो मुण्डकासनम्।

तदा हि सर्वनाड्यश्च वशीभूता न संशयः ।
नाडीक्षालनयोगेन मोक्षदाता स्वयं भवेत् ॥

—(रुद्रयामलतन्त्र, 35/32-33)

इसके लिये साधक का न्योलीकर्म में भी निपुण होना चाहिये। इसके बारे में तो रुद्रयामल तन्त्र में यहाँ तक कहा गया है कि न्यौली योग नाड़ी क्षालन का पारगामी पुरुष राजराजेश्वर के समान हो जाता है।

गजकर्म या गजकरणी—जैसे हाथी अपने सूड़ से जल खींच कर फेंक देता है, वैसे ही खूब जल पीकर मुख में अंगुलि डालकर वमन करके जल को निकालने की क्रिया को गजकरणी क्रिया कहा जाता है। यह क्रिया तब तक करनी चाहिये जब तक कि पेट से साफ जल न निकलने लगे। भीतर गये जल को न्यौली क्रिया करके फेंकना अधिक लाभदायक होता है। पित्त प्रधान पुरुषों के लिये यह क्रिया हितकर है।

कपालभाति कर्म—लोहकार (लुहार) की धौंकनी के समान अत्यन्त शीघ्रता से रेचक, पूरक, प्राणायाम में तेजी से श्वास को बाहर निकालना और फिर खींचना कपालभाति कहा गया है। कफदोष को नष्ट करने वाली यह क्रिया कपालभाति कही जाती है।

भस्त्रावल्लोहकारस्य	रेचपूरौ	ससभ्रमौ।
कपालभातिर्विख्याता	कफदोषविशोषिणी ॥	

—(हठयोगदीपिका)

इस कपालभाति क्रिया से सुषम्णा अथवा फुफ्फुस में से श्वासनली द्वारा कफ बार-बार आने में अर्थात् तेज जुकाम में अप्रत्याशित लाभ होता है। वैसे कफ निकालने में तो नेति और धौतिक्रिया भी लाभदायक है; परन्तु जब नेति और धौतिक्रिया असफल हो जाये, तब वह कपालभाति सफल होती है। इस क्रिया से सुषम्णा फुफ्फुस तथा अन्य नाड़ियों में जमा कफ प्रस्वेदद्वारा से या तो बाहर निकल जाता है या फिर जल जाता है। साथ ही सुषम्णा, मस्तिष्क और आमशय की शुद्धि होकर पाचनशक्ति तीव्र होती है; परन्तु हृदयक्षत, हृदय की कमजोरी, हिक्का, हुलास, वमन, स्वरभंग, तेज बुखार अधिकरक्तपित्त, निद्रानाश, अम्लपित्त आदि रोगों में कपालभाति नहीं करनी चाहिये तथा यात्रा में वर्षा के समय भी कपालभाति नहीं करनी चाहिये।

यह कपालभाति किन-किन रोगों से मुक्ति पाने हेतु करनी चाहिये बताते

हैं कि अजीर्ण, आमवात, पित्तवृद्धि, जीर्णकफव्याधि, कृमि, रक्तविकार, पित्त प्रकोप से उत्पन्न रोगों तथा चर्मरोगों के निवारण हेतु यह क्रिया करनी चाहिये। इस प्रकार से षट्कर्म समाप्त हुए।

रोग निवारण में षट्कर्मों की भूमिका—ये षट्कर्म अनेकों रोगों को जैसे कि गले से आमाशय तक के मार्ग को साफ करके सभी प्रकार से कफ के रोगों में धौतिकर्म की भूमिका है। गुदामार्ग और आंत के निचले हिस्से की सफाई कर मलान्त्र विकार दूर करना वस्तिकर्म का कार्य है। इससे आंतों में स्थित सभी दोष शान्त हो जाते हैं। नेतिकर्म से नासिका से कपाल तक की शुद्धि हो जाती है। इससे मस्तिष्क एवं नेत्रों की शक्ति बढ़ती है। त्राटक कर्म द्वारा नेत्र रोग नष्ट होते हैं। पेट के रोग तथा अन्य सभी दोषों को नष्ट करने में नौली प्रमुख है तथा कपालभाति कफ दोषों का शोषण करती है। अतः षट्कर्मों का अभ्यास करने से जब शरीर के कफदोष मलादि क्षीण हो जाते हैं, तब प्राणायाम का अभ्यास करने से शीघ्र सफलता मिलती है।

स्वर विज्ञान—यह स्वर विज्ञान क्या है? इसे जानना अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि परमपिता परमेश्वर ने शरीर में ही एक ऐसी श्वास की प्रक्रिया बनायी है, जिसके द्वारा मनुष्य अनेकों रोगों का निवारण स्वयं कर सकता है। रोगों का निवारण ही इस विज्ञान द्वारा वह अपनी सफलता का मार्ग खोज सकता है। यह विषय जिस शास्त्र में है, उसे स्वरोदन शास्त्र कहते हैं। यह स्वर शास्त्र बहुत ही कठिन है कठिनता के साथ ही स्वरज्ञाता गुरु का भी अभाव स्पष्ट दिखायी देता है। स्वर शास्त्र प्रत्यक्ष फल देने वाला है। समस्त स्वर शास्त्र तो यहाँ देना सम्भव नहीं कुछ आवश्यक तथ्य इस प्रकार हैं।

कायानगरमध्ये तु मारुतंः क्षितिपालकः।

इस शरीर के मध्य वायु राजा है। प्राणवायु निःश्वास और प्रश्वास नाम वाला है। जब वायु अन्दर ग्रहण की जाती है, उसे निःश्वास कहते हैं तथा जब वायु को बाहर किया जाता है, उसे प्रश्वास कहते हैं। जीव की यह क्रिया मृत्युर्पर्यन्त चलती रहती है। कभी यह श्वास की क्रिया नासिका के दांये छिद्र से होती है तो कभी बांये छिद्र से होती है तथा कभी दोनों स्वर एक साथ बराबर चलते हैं। इसकी पहचान श्वास को तेजी से बाहर फेंकने पर हो जाती है। अतः यदि श्वास को तेजी से बाहर फेंकने पर जिस छिद्र में थोड़ी रुकावट हो, समझो कि उस छिद्र वायु कम बाहर जा रही है। अतः इसके विपरीतादि जिस छिद्र से वायु आसानी पूर्वक बाहर आ रही है, वही स्वरचला हुआ माना जाता है।

नासिका के बायें छिद्र के श्वास को इडा में चलना तथा दाहिने छिद्र से श्वास चलना पिङ्गला में चलना तथा दोनों का समान रूप से चलना सुषम्णा में चलना माना जाता है। ज्ञात हो कि प्रतिदिन ढाई ढाई घड़ी के हिसाब से एक-एक नासिका छिद्र से श्वास चलता है। इस प्रकार रात-दिन में बारह बार बार्यी और बारह बार दार्यी नासिका से क्रमानुसार श्वास चलता है।

रुद्रयामल तन्त्र की भूमिका में पं. मालवीय जी ने पवनविजय स्वरोदय का उदाहरण दिया है जो इस प्रकार है—

आदौ चन्द्रसिते पक्षे भास्करस्तु सितेहरे ।
प्रतिपत्तो दिनान्याहस्त्रीणि त्रीणि क्रमोदये ॥

यह भी तथ्यात्मक रहस्य है कि जब बार्यी नासिकापुर से श्वास चल रहा हो तो उसे चन्द्रस्वर का चलना माना जाता है तथा यदि दार्यी नासिकापुट से श्वास चल रहा हो तो उसे सूर्यस्वर का चलना माना जाता है। अतः शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से तीन-तीन दिन की बारी से चन्द्रस्वर बार्यी नासिका से चलता है और कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से तीन-तीन दिन की बारी से सूर्यस्वर दार्यी नासिका से चलता है। अर्थात् शुक्लपक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा इन नौ दिनों में प्रातःकाल सूर्योदय के समय पहले बार्यी नासिका से ढाई घड़ी तक चन्द्रस्वर चलता है, उसके बाद ढाई ढाई घड़ी से क्रमशः चलता रहता है तथा चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी, द्वादशी इन छः दिनों प्रातःकाल ढाई-ढाई घण्टे तक पहले सूर्य चलता है; फिर उसी क्रम से चलता रहता है। कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और अमावस्या 9 दिन को सूर्योदय के समय सूर्यस्वर (दाहिना) स्वर चलना प्रारम्भ होता है फिर क्रमशः ढाई घड़ी के हिसाब से चलता रहता है तथा चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी, द्वादशी इन 6 दिन सूर्योदय के समय पहले चन्द्रस्वर अर्थात् बार्यी नासिका से श्वास चलता है और ढायी घण्टे बाद बदलता रहता है।

स्वर शास्त्र के अनुसार इस श्वास चलने के क्रम में क्रमशः पाँच तत्त्वों का उदय होता है। इस श्वास की गति को समझकर कार्य करने पर शरीर स्वस्थ रहता है और मनुष्य चिरायु होता है। यही नहीं उससे सभी प्रकार के सांसारिक कार्यों में सफलता मिलती है।

चन्द्रस्वर के चलने का फल—चन्द्रस्वर बायें नासापुट से श्वास के चलने को कहा जाता है, इसे इडा नाड़ी से चलना भी कहा जाता है। अतः उस

समय स्थिर कर्मों को करना चाहिए जैसे कि दूर की यात्रा, घर निर्माण, शान्तिकर्म, धनादि ग्रहण करना, तालाब, उद्यान आदि का निर्माण करना। इसी समय यात्रा, दान, विवाह, नववस्त्र धारण, पोष्टिक कर्म, रसायन दिव्यौषध सेवन आदि स्थायी कर्म प्रारम्भ करने चाहिये। अर्थात् स्थायी शुभ कार्य करने के लिए बायां स्वर चलना अधिक सफलता प्रदान करने वाला होता है।

सूर्यस्वर चलने का फल—जिस समय पिङ्गला नाड़ी अर्थात् दायी नासिका से श्वास चलता हो उस समय कठिन कर्म करने चाहिये। जैसे कठिन क्रूर विद्या का अध्ययन-अध्यापन, स्त्री सहवास, वाहनारोहण, नौका पर तान्त्रिक उपासना, शत्रु को दण्ड, शास्त्राभ्यास, पशुवेचना, ईंट पत्थर आदि का धिसना, हाथी घोड़ा पहाड़ पर चढ़ना, संगीत अभ्यास, दान, क्रय-विक्रय, युद्धभोग, राजदर्शन, स्नानाधर आदि कर्म करने चाहिये।

दोनों नासिका चलने का फल—दोनों नासिकाओं से बराबर श्वास का आवागमन सुषम्या नाड़ी का चलना माना जाता है। ऐसे समय में कोई भी कार्य करना सिद्धिदायक नहीं होता है तथा किसी को उस समय शाप या आशीर्वाद देना सफल नहीं होता है। उस समय तो योग अथवा ध्यान द्वारा भगवान् को स्मरण करना चाहिये।

इस प्रकार इस स्वरविज्ञान के अनुसार कार्य करने पर सफलता प्राप्त हो सकती है।

स्वरचालन द्वारा मङ्गलामङ्गल की सूचना—ऊपर जो श्वास को चलना बताया है, उसके विरुद्ध यदि प्रतिपदा आदि तिथियों में विपरीत श्वास चले तो अवश्य कुछ अमङ्गल हो सकता है। जैसे कि—

(1) शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को सबरे नींद टूटने पर सूर्योदय के समय पहले यदि दाहिनी नासिका से श्वास चलना शुरू हो जाय तो उस दिन से पूर्णिमा तक शरीर में कोई पीड़ा हो सकती है।

(2) कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को यदि सूर्योदय के समय दायी नासिका से श्वास चलना शुरू होवे तो अमावस्या तक कफ विकार पैदा हो सकता है।

यहाँ तक कि इस स्वर विज्ञान में यह भी कहा गया है कि यदि सूर्योदय के समय विपरीत ढंग से दो पक्ष तक श्वास चले तो निश्चित ही किसी अपने बेटे-बेटी, पत्नी आदि को भारी बीमारी होगी अथवा मृत्यु होगी तथा यदि तीन पक्ष तक विपरीत श्वास चले तो निश्चय ही अपनी मृत्यु होगी।

अमङ्गल से बचने का उपाय—यदि शुक्लपक्ष अथवा कृष्णपक्ष की प्रतिपदा के दिन विपरीत क्रम से श्वास चले तो उसके नासिकापुट को बन्द रखना चाहिये और सूर्योदय के समय लगातार बन्द रखने से स्वर परिवर्तन हो जायेगा। अतः व्यक्ति रोग से बच सकता है। यदि रोग हो भी जाये तो विपरीत नासिका पुट को बन्द रखने से रोग नष्ट किया जा सकता है।

अपने अनुकूल श्वास करने का उपाय—जिस छिद्र से विपरीत स्वर चल रहा हो, उसमें रुई भरके श्वास को रोका जा सकता है अथवा जिससे विपरीत चल रहा है, उसे बन्द करके दूसरे छिद्र से तेजी से श्वास लेने पर भी स्वर बदल तथा श्वास का निकलना बदलने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि जो नासिकापुट विपरीत चल रहा हो उसी तरह करवट लेकर लेटने से भी श्वास का चलना बदल जाता है, यह स्वपरीक्षित प्रणाली है, जैसे कि यदि बांया नासापुट चल रहा है तथा उसे बदलना है तो बांयी तरफ करवट लेकर लेटने से भी दायीं तरफ का नासापुट चलना प्रारम्भ हो सकता है।

रोग निवारण में स्वर संचालन—संयम न रखने के कारण रोग पैदा होते हैं। अतः औषधि के बिना भी कुछ भीतरी उपाय भी रोग निवारण कर सकते हैं। इसमें स्वर परिवर्तन से भी कुछ रोग शान्त हो सकते हैं।

जैसे कि ज्वर हो जाने पर जिस नासिकापुट से श्वास चल रहा हो, उसको रुई से बन्द करने पर पन्द्रह दिन में उत्तरने वाला ज्वर पाँच दिन में उत्तर सकता है तथा भोजन जलपान आदि जो भी करना हो, वह दाहिनी नासिका से श्वास चलते समय करना चाहिये। प्रतिदिन इस नियम द्वारा भोजन शीघ्र पचेगा। इसीलिये भोजन के बाद बायीं करवट सोने को कहा गया है; क्योंकि बायीं करवट सोने पर दाहिना स्वर स्वतः चालू हो जायेगा, जो भोजन पाक अवश्य करा देगा।

रोगहरण के अन्य यौगिक उपाय—श्री मालवीय जी के अनुसार—

(1) स्थिरता से बैठकर नाभिमण्डल में दृष्टि जमाकर नाभिकन्द का ध्यान करने से एक सप्ताह में पेट के रोग दूर हो जाते हैं।

(2) प्रातःकाल पैरों को सिकोड़कर करवट बदलने और टेढ़े-मेढ़े होकर शरीर को सिकोड़ने और फैलाने से तिल्ली और लीवर रोग नष्ट हो जाते हैं।

(3) मलमूत्र त्याग करते समय दाँतों को जोर से दबाते रहने पर दाँत निश्चित ही मजबूत हो जाते हैं।

(4) शरीर में किसी भी प्रकार की वेदना होने पर नासिकापुट से चलते हुए श्वास को बदल देने पर वेदना शान्त हो जाती है।

(5) श्वास रोग में तेज श्वास चलने पर चलते हुए नासिकापुट को बन्द कर बदल देने दमा (श्वासरोग) में अवश्य लाभ मिलता है।

(6) प्रतिदिन भोजन के बाद वीरासन पर बैठने से शीघ्र भोजन पच जाता है।

(7) प्रतिदिन प्रातःकाल मुँह में जल भरकर आँखों में पानी का 20 बार झपटा मारने से आँखों की दर्शनशक्ति तीव्र होती है। यह क्रिया स्नान के बाद करनी चाहिए।

तन्त्र की प्राचीनता—तन्त्र शब्द के व्यवहार को देखते हुए यह कहना मिथ्या न होगा कि तन्त्र प्राचीन तो है, परन्तु वेदों से प्राचीन नहीं है, क्योंकि प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में तन्त्र करघे के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अष्टाध्यायी, महाभाष्य, याज्ञवल्क्य स्मृति 1/228, कौटिल्य अर्थशास्त्र, चरक, बृहस्पति आदि ने तन्त्र का अर्थ युक्ति या सिद्धान्त माना है। बाद में अथर्ववेद में और प्रायः अधिकांश पुराणों में तन्त्रविद्या का परिचय प्राप्त होता है। अतः तन्त्रविद्या अधिक प्राचीन नहीं है। रुद्रयामल तन्त्र में कहा गया है कि यह महाविद्या वशिष्ठ ऋषि के समक्ष प्रकट हुई थी। उसने इसे जानने के लिये वशिष्ठ से बुद्ध के पास चीन देश जाने को कहा। यही नहीं, यह भी कहा कि उस बौद्ध देश चीन को जाओ, जहाँ अथर्ववेद भी है तथा उन्होंने वहाँ पञ्चमकारों के उपयोग का निर्देश भी दिया। (रुद्रयामल तन्त्र, पटल 7, श्लोक 121-123, 125, 135, 152-153, 157-158, 160-161)। इससे तो यह भी सिद्ध होता है कि यन्त्र-तन्त्र-मन्त्र विद्या का उत्तम ग्रन्थ अथर्ववेद चीन से लाया गया अथवा चीन देश में महात्मा बुद्ध द्वारा ले जाया गया हो, फिर बाद में लाया गया है।

वैसे ऐन्ड्रजालिक विद्या के रूप में 'वेदों' में इसकी चर्चा मिलती है, परन्तु जादू-टोना के रूप में इसकी निन्दा की गई है। अथर्ववेद में वशीकरण और रोगोत्पादक कीड़ों को नष्ट करने वाले मन्त्र मिलते हैं (अ० 3/25 तथा 2/30)। विन्दुरनित्य के अनुसार पाँचवीं-छठी शताब्दी पूर्व भी तन्त्र साहित्य की उत्पत्ति हुई होगी।

एल० वेगर के अनुसार सातवीं शती में ही चीनी अनुवाद हुए थे, तन्त्रों में दुर्गापूजा का बहुत महत्व है। यह दुर्गा परवर्ती वैदिक काल की देवी है। तन्त्रों के अनेक तत्त्व अथर्ववेद ब्राह्मण ग्रन्थों एवं उपनिषदों में भी प्राप्त होते हैं। पुराणों में स्कन्दपुराण, पद्मपुराण, कालिकापुराण, ब्रह्मवैर्तपुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, मार्कण्डेय पुराण आदि में तन्त्रों का वर्णन मिलता है। यही नहीं, महाभारत में भी तन्त्रों का

वर्णन उपलब्ध होता है। विन्द्रनित्य महोदय का दृष्टिकोण तन्त्रविरोधी प्रतीत होता है। वे पुराणों और तन्त्रों को हीन कोटि के लेखकों की कृतियाँ मानते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने तो पुराणों और तन्त्रग्रन्थों को पाखण्डियों के ग्रन्थ कहा है, परन्तु यदि गम्भीरतापूर्वक देखा जाये तो वास्तव में पुराण और समस्त तन्त्रग्रन्थ पाखण्डियों की रचनायें हैं, फिर भी इनमें कहीं-कहीं वैज्ञानिकता अवश्य झलकती है। यद्यपि विन्द्रनित्य महोदय ने यह भी कहा है कि यद्यपि तन्त्र स्पष्टतः वेदों के विरोधी नहीं हैं, तथापि उनका कहना है कि वेदविहित कर्म हमारे युग में नहीं चल सकते। कुलार्णव तन्त्र में वेदों की निन्दा की गयी है। उसमें वेदों को गणिका इव कहा है, तथापि समयमार्ग का सम्पूर्ण साहित्य पञ्चशुभागम वेदों को ही प्रमाण मानता है।

तन्त्र साहित्य की विशेषताएँ—परम पूज्य महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा माननीय विन्द्रनित्य के कथनों में अवश्य सारांभिता है, परन्तु ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि तन्त्र साहित्य निराधार और निरर्थक है। इसमें उपनिषदों की भाँति ब्रह्मचिन्तन है, साथ ही इनमें आगम और निगम दोनों परम्पराओं का पालन किया गया है। आगम को जहाँ तन्नामाय और निगम को वेदाम्नाय कहा गया है, वहाँ इसके अन्य अर्थ भी हैं। इन ग्रन्थों में पार्वती शिव सम्बाद है। पार्वती शिव से प्रश्न करती हैं, शिव उनका उत्तर देते हैं। अतः जब पार्वती प्रश्न करती हैं और शिव गुरु की भाँति उत्तर देते हैं, तब उसे आगम कहते हैं तथा जब शिव शिष्य की भाँति प्रश्न करते हैं और पार्वती गुरु की भाँति उत्तर देती हैं, तब उस ग्रन्थ को निगम कहते हैं।

तन्त्रसाहित्य पूर्ण रूप से दर्शनशास्त्र पर अवलम्बित है। तन्त्रसाहित्य में अनेकों ऐसे ग्रन्थ हैं, जो केवल ब्रह्मचिन्तनपरक हैं। जैसे कि महार्णवतन्त्र एक तन्त्रग्रन्थ है, जिसमें शाक्त सम्प्रदाय का सर्वोत्तम रूप पाया जाता है। भले ही यह ग्रन्थ प्राचीन नहीं, फिर भी हर प्रसाद शास्त्री के अनुसार गीता के बाद यही रचना सम्भवतः सबसे लोकप्रिय हुई है। इसमें उपनिषदों की भाँति ब्रह्मचिन्तन है। यहाँ परमात्मा पिता के रूप में न होकर माता के रूप में आराध्य रहा है। इसमें शक्ति प्रकृति की पूजा की गयी है। शाक्त दर्शन में प्रयुक्त पराप्रकृति, मूलप्रकृति और जगन्माता आदि शब्द शक्ति के ही पर्याय हैं। समस्त पौराणिक देवियाँ तन्त्र साहित्य में पार्वती, उमा, दुर्गा, काली, लक्ष्मी, सरस्वती, भैरवी आदि जगन्माता के रूप में स्वीकार की गयी हैं। अद्वैतवाद इस तन्त्रसाहित्य की विशेषता रही है। वेदों ने जहाँ निराकार ब्रह्म को ही एक सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता माना

है, वहाँ शाक्त दर्शन ने भी शक्ति को ही सब कुछ स्वीकार किया है, अतः विन्दरनित्य महोदय का कथन ठीक है कि भारतीय बुद्धि बहुत पहले से अनेक दिखायी देने वाले तत्त्वों में एकता खोजने में अभ्यस्त रही है, अतः देवी को किसी नाम से पुकारा जाये, वह सारे देवों की शक्तियों का एक रूप है। ब्रह्माण्ड की रचयिता ब्रह्मा की वह ब्राह्मी शक्ति सरस्वती है। पालन करने वाले विष्णु की वह वैष्णवी शक्ति लक्ष्मी है तथा संहार करने वाले शिव की वह रौद्री शक्ति है, ये सब उसी में स्थित हैं। जब यह महाकाल को आत्मसात् कर लेती हैं, तब आद्या काली कही जाती हैं। यही शक्ति महायोगिनी के रूप में जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करती हैं। इसी शक्ति को विपुरा भी कहा गया है। शक्ति की निम्न विशेषतायें हैं। शक्ति स्वतन्त्र है। शक्ति की स्वतन्त्रता ही तन्त्रशास्त्र की मान्यता है। शैव दार्शनिक 'शिव' को स्वतन्त्र मानते हैं, परन्तु शाक्त दार्शनिक शक्ति को स्वतन्त्र मानते हैं। हयग्रीव ने कहा है कि 'शक्तिरेव कारणम्' अर्थात् शक्ति ही समस्त प्रपञ्च का कारण है।

भगवती सर्वयोनि है—जिस प्रकार समस्त वृक्ष बीज का विकास है और सूक्ष्म रूप से बीज का स्वरूप है, उसी प्रकार भगवती भी बीज रूप है। यह शक्ति तीन रूपों वाली है—1. वामा शक्ति, 2. ज्येष्ठा शक्ति और 3. रौद्री शक्ति। समस्त विश्व की जो परमा शक्ति है, जो सम्पूर्ण संसार की परमेश्वरी है, वही भगवती त्रिपुरा है। उस शक्ति के तीन रूप हैं—1. ज्ञानशक्ति, 2. क्रिया शक्ति और 3. इच्छाशक्ति।

पंचतत्त्व की सारगर्भिता—शक्ति की आनन्दपूर्ण सृष्टि का भौतिक कारण पंचतत्त्व हैं, ये पंचतत्त्व पंचमकार के रूप हैं। पहला तत्त्व है—तेज, दूसरा है—वायु, तीसरा है—जल, चौथा है—पृथ्वी और पाँचवाँ है—आकाश (महानिर्वाण तन्त्र, 7/103, 111)।

इन पंच तत्त्वों को महानिर्वाण तन्त्र में बहुत महत्वपूर्ण माना गया है। वहाँ कहा गया है कि इनका प्रयोग दीक्षितों के चक्र में ही हो सकता है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि स्त्री का स्थान पुरुष के वाम भाग में है, शायद इसी कारण इसे वामाचार कहा गया है। वामाचार का अर्थ है—वामा (स्त्री) का आचार। यह भी विधान है कि चक्रपूजा में जाति का भेद नहीं है, किसी भी जाति की नारी चक्रपूजा की अधिकारिणी है। जहाँ पंचमकार पूजा में मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन की बात आती है, उसके विषय में महानिर्वाण तन्त्र में कहा गया है कि जो अत्यधिक मद्यपान करने वाले हैं, वे देवी के सच्चे भक्तं नहीं हो सकते। चक्रपूजा

में किसी पराई स्त्री के अतिरिक्त मनुष्य अपनी पत्नी का भी उपयोग कर सकता है। मध्य के स्थान पर दूध, चीनी, शहद आदि के प्रयोग की भी आजादी दी गयी है। मैथुन के स्थान पर देवी के चरणकमल की पूजा की जा सकती है। सांसारिक पदार्थों एवं विषयों से पूर्ण विरक्त दिव्य भाव में स्थित साधक के लिये ही पंचतत्त्वों के स्थान पर शुद्ध प्रतीकात्मक वस्तुओं का प्रयोग विहित है। कुछ भी हो, यह तो मानना ही होगा कि तन्त्र साहित्य में पंचमकार पूजा है। अब उसे यह कहकर नहीं टाला जा सकता कि वह पराई स्त्री हो अथवा अपनी हो, उसकी पूजा तो करनी है। इसीलिये तन्त्र साहित्य को समाज ने व्यभिचार के रूप में तिरस्कृत कर दिया है। वैसे कुलार्णव तन्त्र में स्पष्ट रूप से कहा गया कि पंच मकार जो मध्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन हैं, उनके अर्थ अन्य ही हैं।

मध्य—मध्य का अर्थ बाहरी मंदिरा नहीं है। मध्य का अर्थ ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्रदल कमल से बहने वाला अमृत है।

मांस—पुण्य और पाप रूपी पशुओं को ज्ञान रूपी खड़ग के द्वारा मार कर अपने मन को ब्रह्म में लीन करना मांसभोग है।

मत्स्य—मत्स्य एक रूप की साधना है, जो साधक प्राणायाम द्वारा श्वास-प्रश्वास को बंद करके कुम्भक के द्वारा प्राणवायु को सुषुम्णा के भीतर ले जाता है, वही यथार्थ रूप से मत्स्य साधना है। शरीर में इडा तथा पिङ्गला (गङ्गा-यमुना) में प्रवाहित होने वाले मत्स्य हैं।

मुद्रा—विजयतन्त्र के अनुसार दुष्ट व्यक्ति के संग का त्याग करना मुद्रा है।

मैथुन—सहस्रार में स्थित शिव तथा कुण्डलिनी या सुषुम्णा तथा प्राण के मिलन का नाम मैथुन है।

इन पंचमकार के विषय में कुलार्णव तन्त्र में तो यहाँ तक कह दिया है कि केवल शराब पीने से ही व्यक्ति को सिद्धि मिल जाती है तो सभी पापी मंदिरापान कर सिद्धि को प्राप्त कर लें। मांस खाने से यदि सिद्धि हो जाये तो सभी मांसभक्षी सिद्ध पुरुष हो सकते थे तथा मैथुन करने से ही यदि सिद्धि हो जाये तो सभी लम्पटी पुरुष अनायास मुक्त हो जायें। अतः पंच मकारों को व्यभिचार अर्थ में नहीं लेना चाहिये, परन्तु इस प्रकार के अर्थ करना कुछ अटपटा-सा लगता है, क्योंकि जिस कुलार्णव तन्त्र में मांस खाने की इतनी आलोचना की गयी है कि मांस खाने से ही सिद्धि हो जाये तो फिर सभी मांसभक्षी सिद्धि प्राप्त कर लें, उसी में मांस को शुद्ध करने का विधान क्यों किया गया तथा कुलार्णव तन्त्र 5/44

मांस की महिमा क्यों गयी गयी तथा देवता और द्विजों के लिये हिंसा को क्यों वैध कहा गया तथा मांस के अंगों में ब्रह्मा आदि का वास क्यों बताया गया। यही नहीं, उसी कुलार्णव तन्त्र में अनेकों प्रकार की मदिराओं के निर्माण की विधि बतायी गयी है। साथ ही यह भी कहा गया है कि सुरा को देखने मात्र से सब पापों से छुटकारा हो जाता है, उसकी गंध सूंघने मात्र से सौ ज़ज़ों का फल मिलता है। मद्य के स्पर्श मात्र से कोटि तीर्थों का पुण्य मिलता है तथा उसको पीने से चारों प्रकार की मुक्ति साक्षात् ही प्राप्त हो जाती है। यही नहीं यहाँ तक कह दिया कि सुरा की गन्ध में इच्छाशक्ति, उसके रस में क्रियाशक्ति एवं उसके स्वाद में ज्ञानशक्ति रहती है और उल्लास में पराशक्ति रहती है।

सुरादर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

तदगन्धाप्राणमात्रेण शतक्रतुं फलं भवेत् ॥

मद्यस्पर्शनमात्रेण तीर्थकोटिफलं भवेत् ॥

देवि तत्पानतः साक्षात्त्वभेन्मुक्तिं चतुर्विधा ॥

इच्छाशक्ति सुरामोदे ज्ञानशक्तिश्च तद्रसे ।

तत्स्वादे च क्रियाशक्तिस्तदुल्लासे परास्थिताः ॥

—कुलार्णव तन्त्र, पंचम उल्लास

इस प्रकार ये परस्पर विरोधी कथन तन्त्र साहित्य की महत्ता पर प्रश्नचिह्न लगा देते हैं। अतः क्या उचित है, क्या अनुचित है, इसका परिणाम उभर कर सामने नहीं आता है, अतः जिसको जैसा उचित लगे, वही उचित है।

परन्तु एक दृष्टि से यह देखा जाये कि समाधि किस प्रकार से शीघ्र और उचित लगती है, तो उस दृष्टि से मैथुन प्रक्रिया अधिक उचित है तथा उसमें जो पीठों का वर्णन किया है, वह तो बहुत ही कठिन है, क्योंकि तन्त्र में चार पीठों का वर्णन है, वे हैं—1. श्मशान पीठ, 2. शब पीठ, 3. अरण्य पीठ, 4. श्यामा पीठ।

श्मशान पीठ—जिसमें प्रतिदिन रात्रि में श्मशान भूमि में जाकर यथाशक्ति विधि से मन्त्र का जाप करना है।

शब पीठ—में किसी मृतक की लाश पर बैठ कर मन्त्र जाप करना है, उसे शबपीठिका कहा जायेगा। अब कैसे और कहाँ कोई मुर्दा रोज मिलेगा, जिस पर बैठ कर मन्त्र जाप किया जा सके।

अरण्य पीठ—इसमें किसी वन में जाकर मन्त्रों का जाप करना है, वह

भी ऐसे वन में, जहाँ हिंसक प्राणी भी हों, पता नहीं वे हिंसक प्राणी उस मन्त्री को कैसे छोड़ देंगे।

श्यामा पीठ—यह चौथी श्यामा पीठ है। इसकी साधना तो सबसे कठिन है। इसमें किसी षोडशवर्षीया सुन्दरी को वस्त्ररहित कर सम्मुख बैठा कर ब्रह्मचर्य में स्थिर रह कर मन्त्र साधना करे।

अतः यह मार्ग बहुत ही कठिन और असम्भव-सा प्रतीत होता है, परन्तु हमें नीरक्षीरविवेक द्वारा तन्त्रसाहित्य की वरणीय विद्याओं को ग्रहण करना चाहिये, उनके दोषों पर विचार नहीं करना चाहिये।

तन्त्र साहित्य की महत्ता पर विचार करने से पूर्व हम तन्त्रों के वर्णण विषयों पर प्रकाश डालते हैं—

तन्त्रसाधना के चार खण्ड—1. ज्ञानखण्ड, 2. योगखण्ड, 3. क्रियाखण्ड, 4. चर्या खण्ड। जिन्हें पाद भी कह सकते हैं।

1. ज्ञानखण्ड (ज्ञानपाद) —

1. ज्ञानपाद—यह दार्शनिक विवेचन से सम्बन्ध रखता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें एकेश्वरवाद या अद्वैतवाद का समर्थन है। यह अक्षरों, पदों, मन्त्रों से सम्बद्ध है। यह तन्त्रशास्त्र का अपना निजी दर्शन है, जो सांख्य और वेदान्त से मेल खाता है। अतः यहाँ कोई तन्त्र एकदम अद्वैतवादी है तो कोई द्वैत का भी समर्थन करता है।

कहा भी गया है कि—

अद्वैत केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्तिचापरे।

ममतत्त्वं विजानन्तो द्वैतद्वैत विवर्जितम्॥

—कुलार्णवितंत्रम्

तन्त्रों के अनुसार प्रकृति और पुरुष दो अलग-अलग शक्तियाँ हैं, परन्तु मूल तत्त्व एक ही है। इनमें प्रकृति के पाँच कार्य हैं—सृष्टि, स्थिति, संहर, तिरोधान, अनुग्रह। तथा उसकी पाँच शक्तियाँ हैं—चित् शक्ति, आनन्द शक्ति, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति। मनुष्य का शरीर एक ब्रह्माण्ड है। शरीर ही विश्व का रूप है। इसी प्रकार शिव, शक्ति, जीव एवं विश्व सभी एकात्मक हैं।

मुक्ति का अर्थ कुछ पाना नहीं है, प्रत्युत विस्मृत विराट् की पुनः स्मृति 'प्रत्यभिज्ञा' है। 'मैं शिव हूँ' इसकी अभिव्यक्ति जीवन का परम लक्ष्य है।

2. योगपाद—आध्यात्मिक साधना के मार्ग में अग्रसर होने के लिये जिन

आत्मिक शक्तिकेन्द्रों को जगाने की आवश्यकता होती है, वे शरीर में मेरुदण्ड के निम्नतम भाग से उच्चतम भाग तथा उससे भी ऊपर शून्य तक फैले हुए हैं। वे हैं—

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध आज्ञा, अर्धेन्दु (अर्धचन्द्र) रोधिनी, नाद, नादान्त शक्ति, व्यापिका, समना, उन्मना और महाबिन्दु इसी मार्ग में जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय एवं तुरीयातीत रूपी चेतना के अनेकों पर्वतों को लांघना पड़ता है। तब महाबिन्दु तक पहुँचना होता है तथा इसके लिये षट्चक्र और ग्रन्थित्रय (तीन ग्रन्थियों) का भी भेदन करना होता है। साथ ही कुण्डलिनी को भी जगाना पड़ता है।

इस साधना के मार्ग में सफलता के लिये साधक को सात साधन पंचकोश साधन की भी आवश्यकता होती है। इसके लिये यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इन आठ साधनों की भी आवश्यकता होती है। अष्टांग योग को सफल बनाने के लिये 1. प्राण, 2. बिन्दु, 3. नाद, 4. मन, 5. आत्मा की साधना की आवश्यकता होती है। ज्ञानपाद श्रवण, मनन और निदिध्यासन से सिद्ध हो सकता है, किन्तु विचारों की शुद्धता, पिण्डशुद्धि, प्राणशुद्धि, बिन्दुशुद्धि, नादशुद्धि एवं मनःशुद्धि के बिना असम्भव है। योग पुरुष को प्रकृति से अलग करके उसके अपने स्वरूप का दर्शन कराता है। इसी को कैवल्य की स्थिति कहा जाता है।

सांख्य में कहा गया है कि यह प्रकृति जो मन, बुद्धि, अहंकार एवं सेन्द्रिय शरीर वाली है, वह अपने मन द्वारा इन्द्रियों को भटका कर तरह-तरह के आनन्द दिलाती हुई पुरुष को अपने वशीभूत कर लेती है, उसे उसके लक्ष्य कैवल्य से भटकाती रहती है। अतः कैवल्य की प्राप्ति योग द्वारा ही सम्भव है तथा चित्तवृत्ति का निरोध ही योग है, जो योगदर्शन का मूल सिद्धान्त है। अतः इस योग को प्राप्त करने के लिये साधक अभ्यास और वैराग्य की साधना का सहारा लेता है, क्योंकि 'अभ्यासवैराग्याभ्यां तत्त्विरोधः।' उसे वितर्क विचार आनन्द और अस्मिता से युक्त चित्तवृत्तियों के निरोध रूप सम्प्रज्ञात समाधि एवं निर्बीज निर्विकल्प की भी साधना करनी पड़ती है। तब योगी अपने चरम लक्ष्य कैवल्य, चित् शक्ति (आत्मा) की स्वरूप प्रतिष्ठा या अपने वास्तविक स्वरूप अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर पाता है।

इस मार्ग में ऊर्जा प्राप्त करने हेतु साधक छः चक्रों का भेदन, पंचभूतों पर विजय, भूतशुद्धि, कोशशुद्धि और मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग एवं राजयोग

की साधना भी करनी पड़ती है तथा मुख्य रूप से छः चक्रों का भेदन करने पर सोयी हुई कुण्डलिनी को जगाकर शक्ति शिव संयोग रूप समरसता प्राप्त करते ही उसे अणिमादि सिद्धि स्वतः प्राप्त हो जाती है और फिर साधक स्वतः शिव बन जाता है।

सांख्य कारिका में बताया गया है कि प्रकृति और पुरुष का साथ अंधे और लंगड़े का साथ है। दोनों ही अलग चल नहीं सकते। प्रकृति अंधी और पुरुष लंगड़ा है, अतः इस संसार को चलाने के लिये दोनों का यह समझौता है, अंधी प्रकृति पर लंगड़ा पुरुष सवार हो जाये, यही हो रहा है। अंधी प्रकृति पर लंगड़ा पुरुष सवार है, दोनों मिल कर संसार चला रहे हैं।

पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।

पद्मवन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः ॥

—(सांख्यकारिका 21)

यही सृष्टि के विकास की दार्शनिक दृष्टि है। सांख्यतंत्र और योग दोनों ही इस सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं तथा तन्त्र भी इसका समर्थन करता है। अतः पुरुष प्रकृति के बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करे यही तन्त्र का लक्ष्य है।

अब मोक्ष क्या है, इसे बताते हैं।

मोक्ष का स्वरूप—सांख्य का योग और तन्त्र तीनों का ही लक्ष्य मोक्ष प्राप्त कराना है, परन्तु तीनों ने मोक्ष को अलग-अलग माना है।

योग एवं सांख्य के अनुसार पुरुष को प्रकृति से अलग कराना मोक्ष है, परन्तु तन्त्र की दृष्टि में पुरुष और प्रकृति का मिलन करना मोक्ष है, अतः तन्त्र की मुक्ति सारागर्भित है।

तन्त्रशास्त्र का तृतीय पाद (क्रियापाद)—क्रियापाद में मन्दिर-मूर्ति आदि के निर्माण की विधि का वर्णन है। तन्त्रशास्त्र की यह विशेषता है कि उसने समाज को एक सूत्र में बाँधने के लिये उपासना की संस्थायें, मन्दिर, याग, तीर्थयात्रा के पुण्य स्थल, भैरवीचक्र, श्रीचक्र आदि का भी विधान किया है।

तन्त्रशास्त्र का चतुर्थ पाद (चर्यापाद)—इसमें विभिन्न क्रियाओं, उत्सवों एवं सामाजिक कर्तव्यों का वर्णन किया जाता है। तन्त्र में ही अन्तिम चरण चर्यापाद पूजा के क्रिया कलाओं का विवेचन करता है, जो कि साधक को उसकी उपासना के महत्वपूर्ण मार्ग के रूप में उपदिष्ट है। चर्यापाद में भिन्न-भिन्न प्रकृति के साधकों की भिन्न-भिन्न प्रकार की साधना की विवेचना की गयी है।

तन्त्रशास्त्र में भावत्रय—

तत्रैव त्रिविधं प्रोक्तमुत्तमाध्यममध्यमम्

अतः इसमें तीन भाव हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। इन्हीं को दिव्यभाव, वीरभाव और पशुभाव कहा गया है।

सात्त्विक साधकों के लिये दिव्य भाव है। राजसिकों के लिये वीर भाव है और तामसिक साधकों के लिये पशु भाव है।

यहाँ पहले पशुभाव से गुजरना है, फिर वीरभाव में विकास करना है, अन्त में दिव्यभाव रूपी महाफल को प्राप्त करना है। कहा है कि—

सर्वे च पशवः सन्ति, तलवद्भूतले नराः।

तेषां ज्ञान प्रकाशाय, वीरभावः प्रकाशितः ॥

पशुभाव में द्वैतभाव बना रहता है, परन्तु वीरभाव में द्वैत का कुछ अंश रोष रहता है, परन्तु दिव्यभाव में साधक पूर्णतः द्वैतभाव को दूर करके परमात्मा और आत्मा में एकरूपता प्राप्त कर लेता है।

तन्त्र में आचार-विचार—तन्त्रसाहित्य में सात प्रकार के आचार कहे गये हैं। वे हैं—1. वेदाचार, 2. वैष्णवाचार, 3. शैवाचार, 4. दक्षिणाचार, 5. वामाचार, 6. सिद्धान्ताचार और 7. कौलाचार।

वेदाचार—इसमें वेदोक्त रीति से यज्ञ करना, मांसभक्षण न करना, परस्त्री चिन्तन न करना, लोभ, भोग, कुटिलता, गुरुनिन्दा त्याग आदि अनिवार्य है।

वैष्णवाचार—यह भी वेदाचार के ही समान है। इसमें निरन्तर विष्णु के प्रति समर्पित भाव रखना है। लगातार “सर्व विष्णुमयं जगत्” की भावना रहनी चाहिये।

शैवाचार—वेदाचार क्रम शैव में मान्य है, परन्तु शैवाचार में पशुहिंसा विहित है।

दक्षिणाचार—दक्षिणामूर्ति द्वारा प्रवर्तित यह आचार है, इसमें परमेश्वरी का पूजन वेदाचार क्रम से करना है।

वामाचार—वीरभाव स्थित साधकों को वामाचार ग्रहण करना चाहिये तथा इसमें पंचतत्त्वों द्वारा देवता की अर्चना, विभिन्न द्रव्यों द्वारा अर्चना करनी चाहिये तथा साधना की सफलता के लिये साधक को अपने इष्ट कार्य में तत्पर रहना चाहिये तथा सभी प्रकार के पुष्प, दीप, नैवेद्य से अर्चना करते हुए साक्षात् शिव बन कर प्रकृति की पूजा करनी चाहिये।

साक्षात् शिवमयो भूत्वा प्रकृतिं परमां भजेत्।

साधक को चाहिये कि वह महामंत्र की साधना करके अपने में दिव्यभाव का उदय करके कौलाचार का अभ्यास करना चाहिये। तब फिर अपने को देवता जान कर आगम विधान से सूक्ष्म तत्त्वपूर्वक भाव पूजा करनी चाहिये।

सिद्धान्ताचार— शान्ति और इन्द्रियदमन का आश्रय लेकर यज्ञ करते हुए होकर एवं शाक्ततन्त्र शास्त्र का अनुसरण करते हुए आचरण करना चाहिये।

अपनी आत्मा में परतत्त्व की स्थिति मानकर तथा अपने को परमात्ममय समझ कर तथा अपनी आत्मा के सत्य रूप को निरन्तर जानते हुए जीवन जीने से अपनी आत्मा का ज्ञान हो जाता है। ऐसा योगी सालम्ब योगी माना जाता है (भावरहस्य, अ० 12)।

कुलाचार—

आचारैस्तु विहीनोऽपि ब्रह्मभावरतः सदा।

कौलाचारः स विज्ञेयः पूर्णनन्द परायणः ॥

अर्थात् जो आचारों से विहीन भी हो, परन्तु सदा ब्रह्म भाव में रहे और पूर्ण आनन्द परायण हो, वही वृत्ति कौलाचारी वृत्ति है।

अतः कुल शब्द से कुलाचार बना है, अतः कुल शब्द को भी जानना आवश्यक है। अतः विद्वानों ने पंचभूतमय इस समस्त चराचर ब्रह्माण्ड जीव और प्रकृति तत्त्व को कुल कहा है।

कुल और अकुल— महाशक्तिरूपिणी कुण्डलिनी कुल है तथा अकुल शिव को कहा गया है। जो शुद्धसत्त्वगुणमय तथा विभु हैं।

कुलं कुण्डलिनी ज्ञेया महाशक्तिस्वरूपिणी ।

अकुलन्तु शिवः प्रोक्तः शुद्धसत्त्वमयो विभु ॥

कुलीन— जो साधक दोनों परम तत्त्वों शक्ति एवं शिव को जानता है, वह वर्णभेद न रखने वाला, परम श्रेष्ठ साधक कुलीन कहा जाता है।

तपस्तु परमं तत्त्वं यो वै जानाति साधकः ।

कुलीनः परमः सोऽपि वर्णभेदविवर्जितः ॥

पंच मकारों के विषय में पहले ही बता दिया गया है।

कौलार्णव तन्त्र में तो योग ध्यान धारणा यम नियम आदि को भी छोड़ने का विधान किया गया है। कौलावस्था होने पर नियमों, बन्धों, ग्राह्य वस्तुओं, समाधि को भी त्यागने का विधान है।

तान्त्रिक अद्वैतवाद—वैसे तो तन्त्र में अनेकों प्रकार की दृष्टियाँ हैं, परन्तु मूल रूप से तन्त्र में अद्वैत दृष्टि पायी जाती है। कौलमत और समयमत भी अद्वैतवादी हैं, यद्यपि कौल स्वयं द्वैताद्वैत विलक्षणवादी मानते हैं तथापि उनकी मूल चेतना अद्वैतनिष्ठ है।

कौल धारा के महान् दार्शनिक परशुराम जी कहते हैं कि कञ्चुक ही जीव एवं परशिव के मध्य भेदक तत्त्व है, अतः कञ्चुक के हटते ही जीव और परशिव में कोई भेद नहीं रह जाता।

कुलार्णव तन्त्र में ‘अहं ब्रह्मास्मि’ की अद्वैतनिष्ठ दृष्टि स्वीकारते हुए कहा गया है कि—

क्षणं ब्रह्मास्मीतिं यः कुर्यादात्मचिन्तनम्।

तत्सर्वं पातकं हन्यात् तमः सूर्योदये यथा॥

यदि मैं ब्रह्म हूँ, यह क्षण भर के लिये आत्मचिन्तन करे तो जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार साधक के सब पाप नष्ट हो जाने चाहियें।

जीव की शिवरूपता—कौलदर्शन में जीव और शिव की एकरूपता होती है तथा जीव इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि जीव ही शिव है, शिव ही जीव है तथा वह जीव केवल शिव है। कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है कि—

पाशबद्धः स्मृतो जीव पाशमुक्तः सदाशिवः।

अर्थात् इस सेन्द्रिय शरीररूपी जाल में फँसा हुआ जीव जीव है तथा इससे मुक्त हुआ जीव सदाशिव है।

जातिवाद विहीनता—तन्त्रशास्त्र की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें जातिवादिता नहीं है। कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है कि ‘तथा श्रीचक्रमध्ये तु जातिभेदो न विद्यते।’ यही नहीं यहाँ तक कहा गया है कि इस चक्र में जातिभेद नहीं है, सब शिव के समान माने गये हैं।

जीवन्मुक्ति—तन्त्र साहित्य में साधक का लक्ष्य मृत्यु के बाद स्वर्ग प्राप्त करना नहीं है। तन्त्र के अनुसार जीवन्मुक्त का अर्थ है कि जो साक्षात् जीता हुआ मरे के समान स्थित रहता है। न सुनता है, न देखता है, न बैठता है और न चलता है और न सुख को जानता है और न दुःख से संलिप्त होता है और काष्ठ के समान न कुछ जानता है। यह स्थिति तो एक पागल की ही कही जा सकती है, परन्तु मेरे विचार से जीवन्मुक्त वह कहा जायेगा, जिसने कि जीते हुए ही समस्त काम-क्रोध-

लोभ-मोह और अहंकार का परित्याग कर दिया है। सब कुछ त्याग कर समाज एवं देश सेवा में लग गया है।

सबमें चैतन्य की कल्पना—तन्त्र की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें सभी चर और अचर में चेतन तत्त्व का अस्तित्व स्वीकार किया गया है। इसमें जड़ का अर्थ चेतनताहीन होना नहीं है, अपितु चेतन तत्त्व का सोया हुआ होना या फिर अल्पांशता है। यह वास्तव में वैज्ञानिक रहस्य है तथा तन्त्र सांहित्य सबको चैतन्ययुक्त देखना चाहता है। तन्त्र के अनुसार शरीर, मन, बुद्धि, आसन, माला, दिशा, शरीर के अंग मन्त्र और देवता सभी का चैतन्यीकरण आवश्यक है। इसीलिये कुलार्णव तन्त्र में कहा गया है कि—

मन्त्राश्वैतन्यसहिता सर्वसिद्धिकराः स्मृताः।

चैतन्यरहिता मन्त्राः प्रोक्ता वर्णस्तु केवलम्॥

अर्थात् चैतन्ययुक्त मन्त्र ही सब सिद्धि कराने वाले हैं। चैतन्यरहित मन्त्र तो केवल वर्ण कहे गये हैं।

तन्त्र में दीक्षा एवं गुरु का महत्त्व—तन्त्र में दीक्षा सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। दीक्षा बिना साधक का साधना में प्रवेश कदापि सम्भव नहीं। कुलार्णव तन्त्र के अनुसार अदीक्षित व्यक्ति की जप-तप आदि सारी साधनायें व्यर्थ हो जाती हैं।

दीक्षाओं के अनेक प्रकार भिन्न-भिन्न तन्त्रों में बताये गये हैं। परशुराम कल्पसूत्र के अनुसार दीक्षायें चार प्रकार की हैं—1. शाक्ती दीक्षा, 2. शाम्भवी दीक्षा, 3. मान्त्री दीक्षा, 4. शाक्ती शाम्भवी और मान्त्री तीनों प्रकार की दीक्षा। किसी तन्त्र में दीक्षा के 7 तथा 8 भेद बताये हैं। 1. समय दीक्षा, 2. विशेष दीक्षा, 3. साधिका दीक्षा, 4. पुत्रक दीक्षा, 5. वेध दीक्षा, 6. पूर्ण दीक्षा, 7. आचार्य दीक्षा और 8. निर्वाण दीक्षा।

कुलार्णव तन्त्र के अनुसार दीक्षा तीन प्रकार की है—1. स्पर्शी दीक्षा, जो स्पर्श से दी जाती है। 2. दृग्दीक्षा, आँखों से देख कर दी जाने वाली दीक्षा। 3. मानसी दीक्षा, मन से दी जाने वाली दीक्षा। इस प्रकार भिन्न-भिन्न तन्त्रों के अनुसार दीक्षा के भिन्न भेद बताये हैं। यहाँ विषय विस्तार भयं से सबका वर्णन सम्भव नहीं है। तन्त्र साहित्य में दीक्षा का अत्यन्त महत्त्व है। दीक्षा गुरुकृपा या शक्ति का आना माना जाता है। तन्त्र में बिना गुरु के केवल शास्त्राध्ययन से सफलता सम्भव नहीं, तन्त्र में गुरु द्वारा ही आध्यात्मिक ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। साधना निर्बलों के लिये नहीं 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्य।' दीक्षा का कार्य है साधक को नीचे जाने से रोकना और फिर उसे आगे जाने का मार्ग दिखाना। तथा

इसके लिये आध्यात्मिक शक्ति की आवश्यकता है। आध्यात्मिक शक्ति के बिना तात्त्विक सिद्धि कदापि सम्भव नहीं।

तन्त्र में ज्ञान का महत्त्व—तात्त्विकों में साधन पद्धति सर्वसाधन प्रेमी रही है, उन्होंने ज्ञान, भक्ति और योग तीनों मार्गों को स्वीकार किया है, परन्तु ज्ञानमार्ग को विशेष महत्त्व दिया है। वहाँ स्पष्ट कहा गया है कि 'ज्ञानवान्मानवः प्रोक्तः ज्ञानहीनः पशुः प्रिये।' अर्थात् ज्ञानवान् मानव कहा गया है, ज्ञानहीन तो पशु है। ज्ञान भी दो प्रकार का है, एक आगमादि ग्रन्थों से प्राप्त, दूसरा स्वविवेक से प्राप्त, यहाँ दोनों को स्वीकार किया गया है।

गुरु-शिष्य सम्बन्ध—तन्त्र में दो प्रकार के गुरु माने हैं। एक गुरु लौकिक गुरु हैं, जो दीक्षा देते हैं तथा दूसरे गुरु वे 'सदाशिव' हैं, जो परम ब्रह्म स्वरूप हैं, वे गुरुओं के भी गुरु हैं। यहाँ पर दीक्षा गुरु के विषय में बताया जा रहा है कि गुरु और शिष्य की एकता ही दोनों के सम्बन्धों का आदर्श है। परात्रिंशिका विवरण के अनुसार 'गुरु शिष्य पदे स्थित्वा स्वयं देवः सदाशिवः, पूर्वोत्तर पदैवक्यस्तन्त्रं समवतारयत्।' अर्थात् गुरु शिष्य पद में स्थित होकर स्वयं सर्वोच्च गुरु सदाशिव ने पूर्वोत्तर वाक्यों द्वारा इस तन्त्र को सृष्टि पर उतारा था। इससे गुरु शिष्य का सम्बन्ध तथा गुरु का महत्त्व स्वतः स्पष्ट हो रहा है।

तन्त्र में कुण्डलिनी साधना—कुण्डलिनी साधना तन्त्र का सबसे महत्त्वपूर्ण विषय है। जैसे कि शक्ति (प्रकृति) की उपासना जैन, बौद्ध, वैष्णव, शैव और शाक्त आदि सभी में स्वीकृत है, उसी प्रकार कुण्डलिनी शक्ति की साधना भी स्वीकृत है। कुण्डलिनी क्या है, इसके विषय में वामकेश्वर तन्त्र में कहा गया है कि सर्प के आकार के रूप से मूलाधार से समन्वित कमल के तन्तु (डण्ठल) के समान शक्ति नामक कुण्डलिनी है। जैसे कमल का कन्द होता है, उसी मूल कन्द को कणाग्र से देख कर मुख द्वारा पूछ को ग्रहण करके ब्रह्मरन्ध तक समाप्ति है। पद्मासन पर बैठा हुआ अपनी आत्मा में स्थित साधक गुरु द्वारा संकेत पाकर प्राणवायु को ऊर्ध्वगत करता हुआ कुम्भक प्राणायाम में आविष्ट मन होकर वायु के आघात वश से स्वाधिष्ठान गत अग्नि को जलाता हुआ, अग्नि की ज्वाला और वायु के आघात से सर्पराज (कुण्डलिनी) को जगाता है, उसके बाद पहले रुद्रग्रन्थि तोड़ता है, उसके बाद विष्णुग्रन्थि और ब्रह्मग्रन्थि को तोड़ कर षट्चक्रदल कमल को तोड़ता है और सहस्रदल कमल में शिव के साथ आह्वाद प्राप्त करता है। वही परावस्था कही जाती है। वही मोक्ष का कारण है।

'वामकेश्वर तन्त्र' में कुण्डलिनी का परिचय देते हुए कहा गया है कि—

भुजङ्गाकाररूपेण मूलाधारं समाश्रिता ।
 शक्तिः कुण्डलिनी नाम विस्तन्तुनिभाऽशुभा ॥
 मूलकन्दं कणाग्रेण दष्ट्वा कमल कन्दवत् ।
 मुखेन पृच्छं संगृह्य ब्रह्मरन्ध्रं समाश्रिता ।
 पद्मासनगतः स्वस्थो गुदमाकुञ्ज्य साधकः ।
 वायुमूर्ध्वगतिं कुर्वन् कुम्भकाविष्टमानसः ॥
 वाय्वाधातवशादग्निः स्वाधिष्ठानगतो ज्वलन् ।
 ज्वलनाधाततपवनाधातैरुन्निद्रितोऽहिराट् ॥
 रुद्रग्रन्थिं ततो भित्वा विष्णुग्रन्थिं भिनत्यतः ।
 ब्रह्मग्रन्थिं च भित्वैव कमलानि भिनति षट् ॥
 सहस्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते ।
 सा चावस्था परा ज्ञेया सैव निर्वृति कारणम् ॥
 आधारकन्दमध्यस्थितसुषिरमध्ये विस्तन्तुनिभा ।
 तत्र कुण्डलिनी शक्तिः वर्तत इति तात्पर्यम् ॥ (लक्ष्मीधरा)
 भगवती त्रिपुरा भी 'सहस्रार' में परमशिव के पास जाकर विहार करती हैं—
 मनोऽपि ध्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं ।
 सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे ॥

और भगवती कुण्डलिनी भी सहस्रार में पहुँचने के अनन्तर सारे प्रपञ्च को अमृत से नहलाकर 'मूलाधार चक्र' के कुलकुण्ड में आकर सो जाती हैं—
 'स्वामात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि ।

कुण्डलिनी जागरण प्रक्रिया—देवी कुण्डलिनी हुङ्कारपूर्वक जाग्रत होती है और षट्चक्र एवं ग्रन्थित्रय का भेदन करती हुई सहस्रार में अपने प्रियतम शिव के पास पहुँचकर विहार करती हैं—
 'हुङ्कारेणैव देवीं यमनियमसमभ्यासशीलः सुशीलो ।
 ज्ञात्वा श्रीनाथवक्त्रात् क्रममिति च महामोक्षवर्त्मप्रकाशम् ॥
 ब्रह्मद्वारस्य मध्ये विरचयति सतां शुद्धबुद्धिस्वभावो ।
 भित्वा तल्लिंगरूपं पवनदहनयोरा क्रमेणैव गुप्तम् ॥
 "भित्वालिङ्गत्रयं तत् परमरसशिवे सूक्ष्मधाम्नि प्रदीपे ।
 सा देवी शुद्धसत्त्वा तडिदिव विलसतन्तुरूपस्वरूपा ॥
 ब्रह्माख्यायाः शिराया सकलसरसिं ग्राण्य देवीप्यते तनु ।
 मोक्षाख्यानन्दरूपं घटयति सहसा सूक्ष्मताल लक्षणेन ॥"

“नीत्वा तां कुलकुण्डलीं लयवशाज्जीवेन सार्द्धसुधी-
र्मोक्षे धामनि शुद्धपद्मसदने शैवे परे स्वामिनि।
ध्यायेदिष्टफलप्रदां भवगतीं चैतन्यरूपां परां,
योगीन्द्रो गुरुपादपद्मयुगलम्बी समाधौ यतः ॥”
“लाक्षाभं परमामृतं परशिवात् पीत्वा पुनः कुण्डली।
नित्यानन्दमहोदयात् कुलपथान्मूले विशेत् सुन्दरी ॥
तद्दिव्यामृतधारया स्थिरमतिः सन्तर्पयेद् दैवतं।
योगी योगपरम्पराविदितया ब्रह्माण्डभाण्डस्थितम् ॥”

अर्थात् तन्त्रशास्त्र में मूलाधार में सर्प के समान कुण्डली मार कर स्थित है, इसे ही शक्ति कुण्डलिनी कहते हैं। यह कुण्डलिनी जब जगती है, तब हुंकार की ध्वनि होती है और घट्चक्र और तीन ग्रन्थियों को तोड़ती हुई सहस्रदल कमल में अपने प्रियतम शिव के साथ पहुँच कर विहार करती है। इसे कोई सामान्य मनुष्य नहीं जगा सकता। इसे यम-नियम, आसनादि का अभ्यास करने वाला व्यक्ति ही जगा सकता है, जिसने श्रीनाथ के मुख से क्रमानुसार अभ्यास किया हो। ऐसा शुद्ध बुद्धि स्वभाव वाला व्यक्ति ब्रह्मद्वार के मध्य में पवनदहन योग के आक्रमण से प्रतप तथा स्वयंभू लिंग को धेर कर आधी त्रिवली के आकार में स्थित कुण्डलिनी शक्ति को जो कि हुंकार बीज का उच्चारण करते हुए जगाता है और स्वयंभू लिंग के छिद्र से निकाल कर उसे ब्रह्मद्वार तक पहुँचाता है। पहले कुण्डलिनी अनाहत चक्र स्थित बाण लिंग का, फिर आज्ञाचक्र स्थित आज्ञा लिंग का भेदन करती हुई ब्रह्मनाड़ी की सहायता से सहस्रदल कमल में प्रवेश करती है और फिर वहाँ परमानन्दमय शिव में प्रतिष्ठित हो जाती है। यह योगी का काम है कि वह अपने जीवभाव के साथ कुलकुण्डलिनी को मूलाधार से उठा कर बिन्दु शिव के साथ समरस कर दे, वहाँ सहस्रार के कुण्डलिनी लाक्षावर्ण के समान परमामृत का पान कर तृप्त हो जाती है। उसके बाद परमानन्द की अनुभूति को मन में रखते हुए पुनः मूलाधार चक्र में लौट आती है। यही है कुण्डलिनी जागरण योग। इसकी सिद्धि योगी को जीवन्मुक्त बनाती है तथा योगी साक्षात् शिवरूप हो जाता है।

नाद बिन्दु और कला

नाद—प्रणव की 12 कलाओं में बिन्दु और नाद की स्थित है। आगम और तन्त्रासार की विभिन्न शाखाओं में नाद और बिन्दु की अपनी अलग-अलग व्याख्यायें हैं। सबने अपने-अपने तरह से नाद की व्याख्या की है। नादकारिका में

नाद को मालिनी महामाया समना अनाहत बिन्दु अथोष वाणी और ब्रह्म कुण्डलिनी बताया है। प्राणवायु के द्वारा निकाली गयी ध्वनि को भी नाद कहा जाता है। हकारस्तु स्मृतः प्राणः स्वप्रवृत्तो हलाकृतिः स्वच्छन्द तत्र (4.257) के इस कथन के अनुसार स्वाभाविक रूप लगातार हलाकृति प्राण को ही हकार कहा गया है। यही हंसोच्चार कहलाता है। इसी का अनाहत ध्वनि अथवा नादभट्टारक भी कहा गया है। यह नादभट्टारक शब्द ब्रह्म का ही प्रतीक है। यह दश प्रकार का होता है। तंत्रालोक (5.59) में दश प्रकार का राव नाद बताया गया है। स्वच्छन्द तत्र के 11.17 में महाशब्द के नाम से नवम नाद भी माना गया है। दस प्रकार के नाद में धारणा ध्यान और समाधि का अभ्यास करने पर शब्दब्रह्म के स्वरूप को समझ लेता है, वह जान लेता है कि शब्द ब्रह्म से ही परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी इन चार प्रकार की वाणियों का विकास होता है।

यह नाद तत्त्व परा और पश्यन्ती के क्रम से विकसित होता हुआ मध्यमा में आकर योगाभ्यास द्वारा श्रवणेन्द्रिय के अन्तर्मुख होने पर सुनाई पड़ता है। जब यह अन्तर्मुखता की ओर बढ़ता है, तब इसका सूक्ष्म सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम अभ्यास करते-करते और फिर अन्वेषण करके योगी इसके रहस्य को भली-भाँति जान लेता है और फिर वह निष्ठात हो जाता है। शब्दब्रह्म के स्वरूप को अच्छी तरह जान लेने पर साधक अनायास परं ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। अर्थात् लगातार नदन करती हुई अनाहत ध्वनि में चित्त को एकाग्र कर लेने पर योगी का परमाकाशस्वरूप चिदाकाशमय और प्रकाशात्मक स्वरूप प्रकट हो जाता है।

नाद बिन्दु का प्रथम परिमाण है। बिन्दु इच्छा शक्ति है, जो प्रकाश प्रधान है। नाद उसी का विमर्श प्रधान स्वरूप है। सदाशिव दशा नाद का बाहरी स्फोट है। चित्तवृत्ति के ज्ञान में भी नाद व्याप्त है; क्योंकि वर्हा भी वस्तु विमर्शन होता है। शुद्ध विमर्श नाद का सूक्ष्मतर स्वरूप है इसका आकार “अहम्” है। बुद्धि का व्यापार यह नाद विषयोन्मुख विमर्श है तथा सदाशिव को बताने वाला है शैवसिद्धान्त में ज्ञान आत्मा के साथ मिला हुआ रहने पर भी यह नाद की उपाधि है आत्मा अनन्त है, तो नाद भी अनन्त है। सभी प्रकार के ज्ञान बुद्धि में आकर नाद के रूप में व्यवहार्य है। कथन का आशय है कि ज्ञान शक्ति की अतिसूक्ष्म स्थिति ही नादवृत्ति है। सविकल्पक ज्ञान में यह मायावृत्ति के साथ सम्बद्ध रहती है। ज्ञान को यदि बुद्धि का व्यापार माल लें तो शुद्ध भुवनों में स्थित अनन्तादि में सविकल्पकज्ञान नहीं हो सकता; क्योंकि माया के ऊपर बुद्धि तत्त्व का कोई प्रभाव नहीं होता। इसीलिये नादतत्त्व को स्वीकारना ही पड़ेगा। बुद्धि से

निश्चय किया हुआ ज्ञान किसी डार्द से ही ग्राह्य होगा। इसी प्रकार अन्दरूनी विचार से किसी विषय का निश्चय होता है तथा अन्तः बिन्दु रूप आन्तरिक सम्यक् कथन का कारण नाद है। वह नाद आन्तरिक सम्यक् कथन को उत्पन्न करता है। इसी नाद के कारण बुद्धि बाह्य विषय के प्रतिबिम्ब का निश्चय करती है। बाहर प्रकट होने वला शब्द आन्तरिक सम्यक् कथन का बाहरी आकार वास्तव में नाद को बुद्धि के सामने रखता है। बुद्धि द्वारा निश्चय किया हुआ विषय प्रकट वर्णों द्वारा प्रकट होता है। अतः नाद शक्तितत्त्व का नामान्तर है। इसीलिये इसे शैवसिद्धान्त में द्वितीय तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है।

बिन्दु—सत्त्वगुण की वह अवस्था ही बिन्दु है, जिसे वैष्णव विशुद्ध सत्त्व तथा व्यास प्रकृष्ट सत्त्व कहते हैं। यह तमोगुण और रजोगुण से सदा के लिये विमुक्त अवस्था है। तान्त्रिक गण इसे बिन्दु कहते हैं।

शैवसिद्धान्त में छत्तीस तत्त्वों के अन्तर्गत बिन्दु को पहला स्थान दिया गया है। रत्नत्रय श्लोक ७१ में इसे शिव कहा गया है। शक्ति सदाशिव, ईश्वर तथा शुद्ध विद्या इन चार शुद्ध तत्त्वों के शरीर बिन्दु तत्त्व से ही बने हैं। अर्थात् इनका शरीर बैन्दव कहा जाता है। तत्त्व प्रकाश (पृ. 27) के अनुसार बिन्दु को ही परनाद कुण्डलिनी ब्रह्म आदि कहा गया है। भुवनेश्वरों की आराधना करने पर तथा दीक्षित साधकों की अपनी ज्ञान और क्रियाशक्ति से यह प्रकट होता है। यह परमात्म की शक्ति है। हवा से जिस प्रकार समुद्र में लहरें उठती हैं, उसी प्रकार बिन्दु में लहरें उठती हैं। नाद और ज्योति ही इसकी लहरें हैं। मंत्रों मंत्रेश्वर और मंत्रमहेश्वरों का शरीर बैन्दव होता है। बिन्दु का अगला रूप परबिन्दु है। परमकारण व्योमाकार शिवतत्त्व में सभी शब्दों वाल कारण अतिसूक्ष्म नांद अप्रकटरूप में विद्यमान है। इसी को परबिन्दु कहा जाता है। शक्ति तत्त्व के आविर्भूत काल में सभी शब्द समुदाय के केन्द्र में स्थित स्फोट रूपी तत्त्व यही है।

आगम और तन्त्र के महान् आचार्य भास्करराय के अनुसार प्रलयावस्था में ब्रह्म घनीभूत दशा में अवस्थित रहता है। उस समय आगे की सृष्टि की प्रत्याशा में माया शक्ति भी प्रसुप्तावस्था में रहती है। समयानुसार जब ब्रह्म में सृष्टि की विशेष इच्छा होती है, उस समय माया शक्ति जग जाती है, जिसे अव्यक्त प्रकृति कहा जाता है; क्योंकि इस दशा में यद्यपि कर्मों का परिपाक हो जाता है और उसकी शक्ति भी जग जाती है; किन्तु वह अभी अप्रकट ही रहती है। इसी को कारण बिन्दु कहा जाता है; क्योंकि यह सृष्टि रूपी वृक्ष का बीज है। जैसे कन्द से अंकुर फूट कर ऊपर आता है, उसी तरह इस कारण बिन्दु के विकास से आगे

की सृष्टि चलती है। प्रपञ्चसार (१.४१) के अनुसार यह बिन्दु शब्द कारण बिन्दु का बोधक है।

कारण बिन्दु से कार्य बिन्दु नाद और बीज की उत्पत्ति होती है, जो पदार्थों पर, सूक्ष्म और स्थूल दशा के प्रतीक है। ये क्रमशः चित्स्वरूप (केवल चैतन्य रूप) चिद् अचिद् मिला हुआ रूप और फिर अचित् स्वरूप (साकार) होते हैं। ये ही कारण बिन्दु आदिकालीन चार तत्त्व आधिदैवत अवस्था में अव्यक्त, ईश्वर, हिरण्यगर्भ और विराट् के रूप में शान्ता, दामा, ज्येष्ठा, रौद्री शक्ति के रूप में तथा अम्बिका, इच्छा ज्ञान, क्रिया शक्ति के रूप में विकसित होते हैं। अधिभूत अवस्था में से कामरूप, पूर्णगिरि, जालन्धर, ओडयाण पीठ के रूप में होते हैं तथा अध्यात्म पक्ष में कारण, बिन्दु, शक्ति, पिण्ड, कुण्डली जैसे शब्दों से पुकारे जाते हैं। जो मूलाधार में स्थित होते हैं।

तन्त्र साहित्य का कलेवर—तन्त्र साहित्य विशाल साहित्य है। शास्त्रों ने भारत एवं एशिया को तीन भागों में विभाजित कर क्रान्ताओं के रूप में तन्त्रों के ६४ भेद किये हैं।

१. भारतीय तन्त्रशास्त्र सिद्धान्त और साधना ग्रन्थ में इनका वर्गीकरण प्रस्तुत किया है, जहाँ ये विष्णुक्रान्ता, जिसमें सिद्धीश्वर कालीतन्त्र, कुलार्णव, ज्ञानार्णव, नील केत्कारी और श्रीक्रम और सिद्धियामलादि ६४ तन्त्र हैं। २. रथाक्रान्त में मत्स्य सूत शक्तिसंगम, षडाम्नाय, योग स्वरोदय, स्वरोदय, ज्ञानभैरव, कालभैरव आदि ६४ तन्त्र हैं तथा अश्वक्रान्ता में भूतशुद्धि, क्रियासार, तत्त्वचिन्तामणि, बृहत्कंकालिनी क्रियासार, वर्णसार, चूडामणि, महायोगिनी आदि ६४ तन्त्र हैं।

चतुरशती में ६४ तन्त्रों का विवरण मिलता है, जो इस प्रकार है—

शुभागम के ग्रन्थ हैं—१. वशिष्ठ संहिता, २. सनक संहिता, ३. शुक्र संहिता, ४. सनन्दन संहिता, ५. सनत्कुमार संहिता।

२८ ग्रन्थ आगम के हैं, जिनका विवरण भारतीय तन्त्रशास्त्र सिद्धान्त एवं साधना में इस प्रकार दिया गया है—

१. कामिक, २. योगज, ३. कारण, ४. प्रसृतागम, ५. अजितागम, ६. दीप्तागम, ७. अंशुमानागम, ८. सुप्रभेदागम, ९. विजयागम, १०. निःश्वासागम, ११. स्वायंभुवागम, १२. अनलागम, १३. वीरागम, १४. रौरवागम, १५. मुकुटागम, १६. विमलागम, १७. चन्द्रज्ञानागम, १८. बिम्बागम, १९. प्रोद्गीत, २०. ललितागम, २१. सिद्धागम, २२. सन्तानागम, २३. किरणागम, २४. वातुलागम, २५. सूक्ष्म, २६. सहस्र, २७. सर्वोत्तर, २८. परमेश्वर।

तंत्र एवं पुराणों में विज्ञान—वित्तरनित्य महोदय तथा परमश्रेद्धय स्वामी दयानन्द सरस्वती ने पुराण एवं तन्त्र साहित्य को पाखण्ड घोषित किया, इसमें कुछ तो सत्यता है; परन्तु ऐसा भी नहीं है कि समस्त पुराण या तन्त्रसाहित्य निन्दनीय हो। पुराण हमारे इतिहास हैं। उनमें सब विद्यायें हैं, उनमें वैज्ञानिक रहस्य भरे पड़े हैं। आवश्यकता है, उन्हें समझने की जैसे कि मार्कण्डेय पुराण स्थित दुर्गासप्तशती का नित्य लोग पाठ करते हैं। शक्ति पीठों में जाकर कोई स्वयं करता है, तो कोई पण्डित द्वारा कराता है; परन्तु मां के रहस्य को जानने का प्रयास नहीं किया जाता। मेरे पिताश्री प्रोफेसर दलवीर सिंह चौहान ने एक लेख द्वारा यह सिद्ध किया है कि दुर्गा सप्तशती में मां दुर्गा के जो नौ रूप हैं, वे सृष्टि रचना के प्रतीक हैं, उनका वह लेख कई पत्रिकाओं में छपा तथा 2016 के प्राच्य विद्या सम्मेलन में भी पढ़ा गया। उनके अनुसार मां दुर्गा का प्रथम रूप शैलपुत्री है। इसका अर्थ है—सबसे पहले यह प्रकृति जिसे दुर्गा कहो, चण्डी कहो, काली कहो इसके अनेक नाम हैं। तन्त्र में इसे शक्ति कहा गया है। अतः ये जीवन तत्त्व हैं।

अतः पहले यह जीवन तत्त्व शैल (पर्वत) पर पैदा हुआ। अर्थात् प्रलय के बाद जब सूर्य की आग कुछ कम हुई तो जलतत्त्व जिसे जीवन कहा जाता है, उँचे पर्वतों पर बर्फ के रूप में पैदा हुआ; क्योंकि पर्वत पर सूर्य की किरणों के बिखर जाने पर वहाँ का तापमान बहुत कम हो जाता है। अतः वहाँ जलतत्त्व बर्फ के रूप में पैदा होता है। इसीलिये इन्हें मां प्रकृति को शैलपुत्री कहा गया। प्रकृति (मां दुर्गा) का दूसरा रूप है, ब्रह्म चारिणी अतः इसकी व्युत्पत्ति की गयी तो 'बृंह' वर्धने धातु में 'मनिप्' प्रत्यय से 'ब्रह्म' शब्द बना, जिसका अर्थ हुआ बढ़ने वाला तथा चारिणी 'चर्' धातु 'घञ्' प्रत्यय से चार शब्द बना; फिर 'णिनि' प्रत्यय से 'चारिन्' बना। स्थीलिङ्ग 'डीप्' लगाने पर चारिणी बना, जिसका अर्थ है—चलाने वाली। तब ब्रह्मचारिणी का अर्थ हुआ—बढ़े हुए को चलाने वाली। स्वाभाविक है कि बर्फ बढ़ेगी, तब चलेगी। अतः पर्वतस्थ हिम बढ़कर और पिघलकर चलने लगा, तब तीसरा है 'चन्द्रघण्टा' अतः चन्द्र का अर्थ है—चन्द्रमा और पानी। घण्टा का अर्थ है—समूह। अतः चन्द्रघण्टा का अर्थ हुआ—जल का समूह। अतः उस बर्फ के पिघल कर बहने से जल समूह (समुद्र) बन गये। उसके बाद चौथा रूप है—कूष्माण्डा। कूष्माण्डा शब्द कु+ऊष्मा+अण्ड का सन्धि रूप है। 'कु' का अर्थ 'कम', ऊष्मा का अर्थ—गर्भी, अण्ड का अर्थ है—ब्रह्माण्ड; क्योंकि प्रलयकालीन उग्र सूर्य जब करोड़ों वर्ष के बाद ठण्डे हुए और जब कम ऊष्मा वाले हुए तो स्वाभाविक है जल (समुद्र का जल) वाष्प रूप में बदलेगा तथा जब वाष्प बनेगा तो फिर वह वाष्प ठण्ड पाकर जल रूप में परिवर्तित होगी, तो

फिर बादल बनेंगे। अतः मां दुर्गा (प्रकृति) का पांचवा रूप है—स्कन्दमाता। जिसका अर्थ है—स्कन्द = बादल, माता = बनाने वाली। अतः यह प्रकृति बादल बनाने वाली बन गयी। जब बादल बनेंगे तो बरसेंगे ही तथा जब बरसेंगे तो सर्वत्र जल फैलेगा। अतः मा का छठा रूप है—कात्यायनी, जिसका व्युत्पत्तिजन्य अर्थ है—क+तनु विस्तारे धातु में 'ब्यज्' प्रत्यय लगा तो 'तनु' का अनुबन्धलोप होकर 'त्' शेष रहा और 'ब्यज्' प्रत्यय का अनुबन्ध लोप होकर 'य' शेष रहा, तब हुआ क+त्+य। क्योंकि 'ब्यज्' प्रत्यय जित् है। इसमें 'ज्' की इत्संज्ञा हुई है तथा जहाँ 'ज्' की इत्संज्ञा होती है, वहाँ पर आदि वृद्धि का नियम है। अतः आदि वर्ण 'क' को 'का' होकर कात्य शब्द बना, फिर कात्य में 'फक्' प्रत्यय लगा और 'फक्' को आयन आदेश हुआ तो कात्यायन शब्द बना और स्त्रीलिङ्ग में 'डीप्' से कात्यायनी शब्द बना, जिसका अर्थ है—जल का विस्तार करने वाली। अतः जब बादल जल वर्षा करेंगे, तो जल का विस्तार होगा ही, जल फैलेगा ही। अतः मां प्रकृति का यह षष्ठ रूप कात्यायनी है। जब समस्त ब्रह्माण्ड मेघाच्छव्र होगा तो अन्धकार छा जायेगा। अतः मां का सप्तम रूप कालरात्रि इस कालरात्रि का समय लाखों वर्ष का रहा होगा। तब चिकाल के बाद महागौरी मां का अष्टम रूप है जो अन्धकार पर विजय का प्रतीक है तथा नवम रूप सिद्धिदात्री रूप सृष्टिकार्य में सफलता का घोतक है। इस प्रकार मां, दुर्गा, प्रकृति, महात्रिपुरेश्वरी (प्रकृति) द्वारा सृष्टि करने की प्रक्रिया मार्कण्डेय पुराण में स्पष्ट घोषित है। कुछ लोग इसे यदि मनगणन्त कहें तो बतायें कि इसमें कैसे कल्पना है। ऐसी कथायें पुराणों में और तन्त्रसाहित्य में अनेकों हैं, जो सब वैज्ञानिक हैं।

उदाहरण के लिये मधुकैटभ का विष्णु के साथ पांच हजार दिव्य वर्षों तक युद्ध हुआ। तब यह संख्या 66612500 मानव वर्ष होता है। अतः ऐसा युद्ध किसी मानव रूप विष्णु और मधुकैटभ रूप राक्षस में तो सम्भव नहीं है अतः यह मानना ही होगा कि विष्णु कोई मनुष्य नहीं, अपितु जीवनदायक प्रकृति का रूप रहा होगा। अथवा विष्णु सत्त्व गुण का प्रतीक है, जिसे ऑक्सीजन भी कहा जा सकता है तथा मधुकैटभ तमोगुण का प्रतीक है तथा सत्त्वगुण के उद्वेक को रोकने के लिये तमोगुण प्रवृत्त रहा। तब 66 करोड़ वर्ष बाद तमोगुण पर सत्त्वगुण की विजय हुई और फिर विष्णु सत्त्व द्वारा सृष्टि सम्पन्न हुआ।

अतः मेरे कहने का आशय है कि पुराण और तन्त्र साहित्य पूर्णतः वैज्ञानिक हैं। आवश्यकता उस पर गहन अध्ययन की है। यदि वैज्ञानिक इस पर अनुसन्धान करें तो अवश्य संसार के कल्याणार्थ कुछ तथ्य प्राप्त कर सकेंगे।

अतः यह मानना होगा कि पुराणों में तन्त्रसाहित्य है, वह बहुत ही

रहस्यात्मक है तथा तन्त्रसाहित्य प्रायः अधिकांश पुराणों और हमारे विशालकाय ग्रन्थ महाभारत में भी है। अतः पुराणों और तन्त्र साहित्य को पाखण्डियों का ग्रन्थ कहना उचित नहीं है।

तन्त्र संग्रह परिचय— सम्पूर्णनिन्द संस्कृत विश्वविद्यालय का सरस्वती भवन पुस्तकालय हस्तलिखित पाण्डुलिपियों का भण्डार है। इस पुस्तकालय में असंख्य पाण्डुलिपियाँ हैं, जिनमें कुछ पूर्ण और कुछ अपूर्ण हैं। इन पाण्डुलिपियों का 80 प्रतिशत भाग सम्पादित होकर प्रकाशित हो चुका है तथा अभी भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पाण्डुलिपियाँ हैं, जो प्रकाशित होकर संसार का कल्याण कर सकती हैं।

इसी पुस्तकालय से पण्डित गोपीनाथ कविराज महोदय ने पांच तन्त्रसंड्ग्रह सम्पादित कर प्रकाशित करवाये। उसी क्रम में तन्त्रसंड्ग्रह का पांचवाँ भाग भी प्रकाशित हुआ। इसका सम्पादन पण्डित श्री ब्रजवल्लभ द्विवेदी, अध्यक्ष योगतन्त्र विभाग की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

इस संड्ग्रह में सात तन्त्रग्रन्थ हैं—1. सर्वविजयी तन्त्र, 2. गुप्तसाधन तन्त्र, 3. माया तन्त्र, 4. षडाम्नाय तन्त्र, 5. गायत्री तन्त्र, 6. चीनाचार तन्त्र, 7. भूतशुद्धि तन्त्र।

इन विरल प्राप्य दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशन से तन्त्रशास्त्र के ग्रन्थों का उद्धार, संरक्षण, प्रचार तो हुआ ही, साथ ही वैदिक-पौराणिक-तान्त्रिक विद्या का अध्ययन करने वालों और शोधार्थीयों की वैदिक-पौराणिक विषयों के साथ तान्त्रिक विषयों के तुलनात्मक अध्ययन में प्रवृत्ति होगी। ऐसे अनेक विषय हैं, जिनका वैदिक-पौराणिक वाङ्मय में नाम भी नहीं है। उनके केवल नाम मात्र साम्य हैं। उनके अर्थ करने की क्रिया में महान् भेद ग्रन्थ को देखने से जाना जा सकता है। उदाहरण के लिये गायत्री मन्त्र को तो सभी जानते हैं तथा उसका नित्य जाप सन्ध्या तथा हवन में वैदिक धर्मानुयायी (आर्यसमाजी) तथा सनातन धर्मानुयायी सभी नित्य करते हैं।

गायत्री वेदमाता हैं, ऐसा वैदिक और पौराणिक वाङ्मय में गायत्री के विषय में बहुत चर्चायें, व्याख्यायें और विशेष व्याख्यायें हैं, तथापि तन्त्रग्रन्थों में गायत्री विषयक विचारों के अवलोकन से आँखें खुल जाती हैं। एक नवीन दृष्टि प्राप्त होती है तथा मायातन्त्र, षडाम्नाय तन्त्र में सांख्य और वेदान्त का संगम मन को प्रसन्न कर देता है। भूतशुद्धितन्त्र जिसमें योगतन्त्र क्रिया का संक्षिप्त रूप बताया गया है, वह भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसी प्रकार ही चीनाचार तन्त्र के माध्यम से पूजा आचार के विज्ञान के साथ-साथ भौगोलिकी और ऐतिहासिकी दृष्टि

समुद्घाटित होती है। अतः ऐसे ग्रन्थों का सम्पादन कराकर लोकार्पण एक महान् कार्य है।

यह सब कुछ तो है ही माननीय ब्रजवल्लभ द्विवेदी महाभाग ने इन ग्रन्थों का लोकार्पण तो किया गया, परन्तु इनका हिन्दी अनुवाद नहीं हुआ था, जिससे सामान्य जन तक इनकी पहुँच नहीं थी, साथ ही संस्कृत विषयस्थ योगतन्त्र के अनुसन्धाताओं को कुछ कठिनाई का सामना करना पड़ रहा था। अतः चौखम्बा संस्कृत सीरीज के प्रकाशक माननीय ब्रजमोहन दास गुप्त ने इन तन्त्र ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद की आवश्यकता को समझा, ताकि ये ग्रन्थ सामान्य जन तक पहुँच सकें। इनमें गायत्री तन्त्र, गुप्तसाधन तन्त्र का अनुवाद हो चुका है। शेष पांच ग्रन्थों का अनुवाद कराने के लिये माननीय ब्रजमोहन दास जी ने मेरे पिता श्री से कहा तो उन्होंने सर्वविजयी तन्त्र का अनुवाद डॉ. सुभाष कुमार किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली के द्वारा करवाया तथा अन्य चार ग्रन्थों का अनुवाद मुझे करने को कहा। मेरे पिता श्री को भले ही समयाभाव था, तथापि उन्होंने मुझे इस कार्य के लिए उत्साहित किया; क्योंकि वे सम्रति लगभग दो वर्ष से वे एक अत्यन्त मिलष्ट हस्तलिखित पाण्डुलिपि के सम्पादन एवम् अनुवाद में व्यस्त थे, जिसका नाम है—रुद्रयामलतन्त्रम् (धातु खण्डम्)। यह पाण्डुलिपि ऐसी लिपि में थी कि उसको साझना सामान्य जन का कार्य नहीं, जिसकी अशुद्धियाँ सुधारकर हिन्दी अनुवाद करने के कारण वे मुझे समय नहीं दे सके, तथापि अपने अथक परिश्रम से मैं इन चारों तन्त्र ग्रन्थों का अनुवाद करने में सफल हुआ। कहीं-कहीं पिता श्री की सहायता लेनी पड़ी; क्योंकि विना गुरु के कोई भी कार्य सम्भव नहीं। इस ग्रन्थ की भूमिका लिखने में मैंने अनेक तन्त्रग्रन्थों की सहायता ली है, उन सबका मैं हृदय से आभारी हूँ। षडाम्नाय तन्त्र का अनुवाद मैं कर चुका हूँ तथा शेष चीनाचार तन्त्र, माया तन्त्र और भूतशुद्धि तन्त्र का अनुवाद प्रकाशनार्थ प्रस्तुत कर रहा हूँ। यहाँ अब भूतशुद्धि तन्त्र का अनुवाद प्रस्तुत किया गया है।

भूतशुद्धि तन्त्र का परिचय—कोलकाता स्थित विद्वान् श्रीमान् रसिक मोहन चट्टोपाध्याय महोदय ने अपने तन्त्र संग्रह ग्रन्थ में प्रायः चालीस तन्त्रग्रन्थ बंगलिपि में प्रकाशित किये थे, जो इस समय उपलब्ध नहीं हैं। इन ग्रन्थों को आसान बनाने के लिये तन्त्रसंग्रह नामक प्रकाशन प्रारम्भ किया गया और प्रकाशन भी हुआ।

सरस्वती भवन पुस्तकालय में सङ्गृहीत मातृकाओं की सहायता से इन

ग्रन्थों के संस्करण सम्पादित किये गये। भूतशुद्धि तन्त्र के चतुर्थ भाग में प्रकाशित सरस्वती भवन की मातृका में भिन्न ही स्वरूप था। उसका प्रकाशन तन्त्रसंग्रह के चतुर्थ भाग में परिशिष्टरूपेण किया जाये, ऐसा तब उसके बारे में ज्ञात हुआ। तब इस भूतशुद्धि तन्त्र के सर्वानन्द में नूतन स्वरूप देखना चाहिये। प्रायः विषयवर्णन की समानता होने पर भी एक भी शलोक वहाँ का यहाँ दिखाई नहीं देता है, परन्तु विषय में समानता है। फिर भी तत्त्वप्रकाश की भोजराजरचित शैवसिद्धान्त ग्रन्थ की कुमारदेव रचित तत्त्वप्रकाशिका नामक टीका में भूतशुद्धितन्त्र का एकाध ही शलोक समुद्धृत दिखायी देता है। वह यहाँ तीन पंक्तियाँ इन दोनों भूतशुद्धि ग्रन्थों में नहीं दिखायी देतीं, ऐसा कुमार देव द्वारा उद्घृत वचन है। यह अन्य किसी भूतशुद्धि तन्त्र का नहीं है। ये तीन पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

अन्यथाख्यामुपाश्रित्य सांख्यवच्छिवशासनम्।

या अनिर्वचनीयेति तथा सिद्धान्तवादतः ॥

वेदान्तवादिनां दृष्टिमाश्रितं वैष्णव मतम् ॥ इति

सरस्वती भवन में भूतशुद्धितन्त्र की मातृका संख्या 25754 है।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के प्रकाशन विभाग से प्रकाशित तन्त्रसंग्रह पंचम भाग में सातवां परिशिष्टात्मक भूतशुद्धितन्त्र है।

इस तन्त्र में देवी पार्वती और भगवान् शंकर का संवाद है। देवी पार्वती भूतभावन भगवान् शंकर से पूछ रही हैं कि मानव शरीर ही नहीं, प्रत्येक प्राणी का जो यह शरीर पंचमहाभूतों पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश से बना है। इस पंचभूतात्मक शरीर की शुद्धि कैसे हो सकती हैं। इसीलिये भूतभावन भगवान् शंकर उनको भूतशुद्धि के बारे में बताते हैं। इसी क्रम में देवी पार्वती जी ने पूछा कि हे देव! हे सर्वज्ञ! योग शारीरिक है तथा आप योग को जानते हैं। योग के बिना जप-होम-पूजा आदि सिद्ध नहीं होते हैं। तथा न ही योग के बिना आत्मज्ञान ही होता है। अतः आप मुझे योग को बताइए। इसी प्रश्न के उत्तर में योग की समस्त क्रियाओं को संक्षेप रूप से बताते हैं। इस बताने के क्रम में उन्होंने कन्दमूल, नाडीत्रय, नाडीपञ्चक, ब्रह्मरन्ध, वज्रा, चित्रिणी, ब्रह्मनाडी, सहस्रदल कमल का वर्णन किया है। उसके मूलाधार में प्रसुप्त सर्पाकार कुण्डलिनी का वर्णन किया है। फिर स्वाधिष्ठान चक्र का वर्णन है। फिर मणिपूरक, अनाहत चक्र तथा विशुद्ध नामक चक्र का वर्णन किया है। आज्ञाचक्र के बाद नाद-नादान्त-शक्ति, समनी और उन्मनी दशाओं का वर्णन करते हुए ब्रह्मपुर की स्थिति बतायी है। इसके बाद पार्वती के पूछने पर कुण्डलिनी शक्ति से ब्रह्मरन्ध में प्रवेश होने

का उपदेश दिया है, फिर पिण्डविशेषधन प्रक्रिया अर्थात् इस पंचभूतात्मक शरीर के शोधन का प्रकार बताया है। अन्त में त्रिवेणी पुष्कर आदि तीर्थों में स्नान करके सहस्रार में गुरु सदाशिव की समाराधना करनी चाहिये। यह समझाया है।

ऐसा तो अन्य तन्त्र ग्रन्थों में भी है, परन्तु इस ग्रन्थ की यह विशेषता है कि इसमें संक्षेप में सब कुछ बता दिया गया है। ग्रन्थ अत्यन्त लघुकाय कलेवर का है; परन्तु मैंने इसकी भूमिका तन्त्र और योग द्वारा समाज को होने वाले लाभों को स्पष्ट किया है। वैसे तो परमपूज्य प्रातःस्मरणीय स्वामी रामदेव महाराज ने ही योग के लाभों को सामान्यजन तक पहुँचा कर भारत का ही नहीं, विश्व का कल्याण किया है, तथापि मेरा यह अनुवाद अवश्य ही समाज के समक्ष तान्त्रिक गुणावगुणों को सुस्पष्ट करेगा; क्योंकि मैं यहाँ पर कुछ नहीं हूँ, मैं तो उन ऋषि-महर्षियों के विचारों को समाज के समक्ष रख रहा हूँ। अब समाज को अधिकार है कि स्वीकार करे या न करे।

यह तन्त्र बहुत कठिन है। मेरे जैसे सामान्य व्यक्ति द्वारा इसका सम्पादन और अनुवाद करना ज्ञान के महासागर में डुबकी लगाने के समान है; फिर भी जगन्माता, प्रकृतिरूपा महात्रिपुरसुन्दरी की कृपादृष्टि इस तन्त्र को पूर्ण करने में मूलकारण है। उसके बाद अनेकों ग्रन्थों के लेखक परम पूज्य पिता श्री प्रो. दलवीर सिंह चौहान का सहयोग माताश्री रामबेटी देवी की प्रेरणा, आभाराह है।

सर्वप्रथम मैं उच्च कोटि के कृषि वैज्ञानिक, अनेक वैज्ञानिक पुस्तकों और शोध लेखों के लेखक, कीवी फल की खेती के आविष्कारक, कुलपति तथा भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद के सहायक महानिदेशक जैसे पदों को सुशोभित कर चुके, सम्प्रति कई वैज्ञानिक समितियों के अध्यक्ष, उच्चकोटि के विद्वान्, परम पूज्य प्रातःस्मरणीय प्रोफेसर धर्मेन्द्र सिंह राठोर का अन्तर्दृदय से आभार व्यक्त करता हूँ, जिनका यदा कदा आशीर्वाद ही मेरे लिये वरदान है। वे सदैव मुझे कुछ लिखने के लिये प्रेरित करते रहते हैं।

सर्वाधिक आभारी तो मैं उन परमपूज्य ब्रह्म स्वरूप श्री ब्रजमोहन दास गुप्त का हूँ, जिन्होंने पाण्डुलिपि का सम्पादन और हिन्दी अनुवाद के प्रकाशन का सुअवसर प्रदान किया। मैं उनके इस कृतार्थ का ऋणी हूँ और रहूँगा। इसके साथ इस तन्त्र सृष्टि में पुरुष प्रकृति रूप श्री कमलेश गुप्त तथा श्री सचिन जी का भी आभारी हूँ, जिन्होंने दास रूप ब्रह्म को इस ग्रन्थ सृष्टि में सहयोग किया।

इसके साथ सबको आभार व्यक्त करने के साथ पाण्डुलिपि के अस्पष्ट एवं असुन्दर वर्णों को कम्प्युटर द्वारा स्पष्ट एवं सुन्दर रूप प्रदान करने वाले जी. एस. पी. कम्प्युटर के श्री संदीप जी को भी आभार व्यक्त करता हूँ।

इस ग्रन्थ की सम्पूर्णता में मेरी प्रिय पत्नी डॉ. निर्मला के प्रेमोद्देलित प्रेरणा भी आभरणीय है; साथ ही मेरे धर्म पिता श्री महावीर सिंह, सासू माता श्री की उत्साहपूर्ण प्रेरणा तथा भाई श्री ओ३म प्रकाश सिंह, श्री डॉ. थान सिंह, श्री नीलम कुमार, श्री शिव कुमार, श्री भीम सिंह, श्री सत्याल सिंह और श्री रविन्द्र सिंह की उत्साहपूर्ण प्रेरणा भी आभार योग्य है।

साथ ही मैं अपने स्वार्थनिरपेक्ष सुहृदगण डॉ. सरोज कुमार विशेष सचिव प्राविधिक शिक्षा उत्तर प्रदेश, संजय कुमार सिंह डायरेक्टर, एलीमैन्ट्री एजुकेशन बिहार, डॉ. सुधीर कुमार सिंह सहायक प्रोफेसर दयालसिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, डॉ. सत्यपाल सिंह संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, डॉ. सुभाष कुमार किरोड़ीमल कॉलेज दिल्ली, संजय सिंह जौनपुर, सी. ए. नवीन जोशी, का भी मैं हृदय से आभारी हूँ, जो मुझे बाद-विवाद में सहयोग करते रहे।

संसार में कितना भी उच्चकोटि का विद्वान् होते हुए भी त्रुटि होना स्वाभाविक है; परन्तु मैं तो एक सामान्य व्यक्ति हूँ। अतः विद्वानों से मेरा अनुरोध है कि इस पुस्तक लेखन में यदि कोई त्रुटि रह गयी हो तो क्षमा करते हुए संशोधन हेतु सूचित करने की कृपा प्रदान करेंगे।

इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि के कतिपय श्लोकों में व्याकरणात्मक त्रुटियाँ हैं। जिनका संशोधन नहीं किया गया है। संशोधन करने पर छन्दभंग का दोष उपस्थित होने के भय से यथावत् रख दिया गया है तथा कविता में शब्दत्रुटि क्षम्य होती है अतः पाठक इसके लिये क्षमा करेंगे।

मैंने इस ग्रन्थ की टीका का नाम अपनी पत्नी के नाम पर 'निर्मला' टीका रखा है; क्योंकि जिस प्रकार प्रकृति के विना पुरुष कुछ नहीं कर सकता। उसी प्रकार पत्नी के विना पति अक्षम है। अतः मेरी यह टीका सदैव निर्मल रहे इस कामना के साथ मां त्रिपुरेश्वरी के चरणों में समर्पित करता हूँ।

रूपेश कुमार चौहान

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठाङ्क
प्रथम पटल	1-6
द्वितीय पटल	7-9
तृतीय पटल	10-13
चतुर्थ पटल	14-16



कार्यी संक्षेप समाचार

प्राप्ति

०-८

१-२

३-०८

५-६८

प्राप्ति

१५८ प्राप्ति

१५९ प्राप्ति

१६० प्राप्ति

१६१ प्राप्ति



कृ१६९८

तन्त्रसङ्ग्रहे

भूतशुद्धितन्त्रम्

अथ प्रथमः पटलः

३० देव्युवाच

कथयेशान्! सर्वज्ञ! यतोऽहं तव वल्लभा।

योगं शारीरिकं देव! यतस्त्वं योगवित्तमः॥१॥

महादेवी पार्वती ने भूतभावन भगवान् शंकर से कहा कि हे स्वामी! हे सब कुछ जानने वाले प्रभो! क्योंकि मैं आपकी प्राणप्रिया हूँ, इसलिए शारीरिक योग को आप से पूछना चाहती हूँ, क्योंकि आप योग को सबसे अधिक जानने वाले हैं॥१॥

विना येन न सिद्ध्येत् तु जपहोमार्चनादिकम्।

आत्मज्ञानं महेशान्! येन त्वं सिद्धिमान् गुरुः॥२॥

तथा हे परमेश्वर जिस योग के बिना जप, हवन और अर्चना पूजा आदि नहीं सिद्ध होते हैं तथा न ही आत्म-ज्ञान होता है। हे महादेव! जिससे आपको आत्म-ज्ञान हुआ है तथा जिसके द्वारा आप सिद्धि प्राप्त करने में गुरु हुए हैं, उस आत्मज्ञान को मुझे बताइये॥२॥

भैरव उवाच

शृणु देवि! प्रवक्ष्यामि सारात् सारतरं परम्।

स्त्रीस्वभावात् कदा कुत्र न प्रकाशयं कदाचन॥३॥

भगवान् शंकर बोले! हे देवि! पार्वति! सुनो! मैं तुम्हें उस अत्यन्त गूढ़ रहस्य को बताऊंगा, जिससे आत्मज्ञान होता है और जप-होम-अर्चना आदि में सफलता मिलती है; परन्तु एक शर्त है कि तुम स्त्री हो तथा स्त्रीस्वभाव चंचल होता है, स्त्रियां गुप्त बात को गुप्त नहीं रहने देतीं। वे कभी अपने स्वभाव वश कब कहाँ कभी भी किसी से कह ही देती हैं। अतः जो मैं तुम्हें बताने जा रहा हूँ, उसे कभी कहीं भी प्रकाशित मत करना॥३॥

अतिप्रेमवशीभूतः कथयामि तवाऽग्रतः।

गुदोर्ध्वं द्व्यङ्गुलं देवि! कन्दमूलं खगाणडवत्॥४॥

तत्रनाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसप्ततिः।

तासु नाड्यः प्रधानास्तु तत्र मुख्याश्चतुर्दश॥15॥

भगवान् शंकर ने कहा कि हे पार्वति! अत्यन्त प्रेम से वशीभूत होकर मैं तुम्हारे आगे यह रहस्य बता रहा हूं। हे देवि! गुदा (मलद्वार) के ऊपर दो अंगुल की दूरी पर अण्डकोश के नीचे पक्षी के अण्डे की भाँति एक कन्दमूल है, वहीं पर 17000 नाडियां उत्पन्न हुई हैं, उन नाडियों में चौदह नाडियां प्रधान और मुख्य हैं॥14-5॥

तासां मुख्यतमास्तिस्त्र इडाद्याः परेश्वरि॥

इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णा चेति तत्क्रमात्॥16॥

शंकर जी बोले कि हे पार्वति! उन चौदह नाडियों में इडा आदि तीन मुख्यतम नाडियां हैं तथा वे क्रमशः इडा पिङ्गला और सुषुम्णा हैं॥16॥

सुषुम्णा त्रितया ज्ञेया वज्राचित्रान्तरान्विता।

पञ्च नाड्यः प्रधानास्तु योगिनां साधने हिताः॥17॥

सुषुम्णा नाड़ी तीन तरह की जाननी चाहिए। वे हैं—वज्रा, चित्रा और अन्तरा, पांच नाडियां प्रधान हैं, जो योगियों की योगसाधना में हितकर हैं॥17॥

मेरोर्वामि इडा दक्षे पिङ्गला चाऽस्थिनि स्थिते।

पार्श्वयोर्मध्यदेशे च सुषुम्णा त्रिगुणा मत्ता॥18॥

मेरु के बांये भाग में इडा नाड़ी स्थित है और दांये (दक्षिण) भाग में पिङ्गला नाम की नाड़ी है तथा बीच में हड्डी में पीठ के मध्य स्थान में रीढ़ की हड्डी के अन्तर्गत सुषुम्णा नाड़ी स्थित है, जो त्रिगुणा तीन गुणों वाली मानी गयी है॥18॥

पृष्ठदेशं समाश्रित्य प्रोदगता ब्रह्मरन्धकम्।

सुषुम्णा चैव वल्ली च मेरोः शिलष्टाः पुरोगताः॥19॥

वह सुषुम्णा नाड़ी शरीर के पीछे के स्थान अर्थात् पीठ का आश्रय लेकर ब्रह्मरन्ध में जाकर निकलती है। सुषुम्णा नाड़ी और उसकी एक शाखा शरीर के मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) से चिपकी हुई आगे ऊपर की ओर चली गयी है॥19॥

ग्रीवान्तं प्राप्य गलितं तिर्यग्भूता वराङ्गने॥

शङ्खिनीनालमालम्ब्य गता सा ब्रह्मसाधने॥10॥

ग्रीवा गर्दन के अन्त में पहुंच कर सुषुम्णा नाड़ी गलित हो जाती है और वहां जाकर, हे श्रेष्ठ अंग वाली पार्वति! वह तिरछी हो जाती है और शंखिनी नाल को आलम्बन कर ब्रह्मसाधन में चली गयी है॥10॥

तदूर्ध्वं द्व्यङ्गुलान्तं च वज्राख्या चित्रिणी तथा।
त्रिगुणा चातिसूक्ष्माग्रा ललन्ती ललना तथा॥1 1॥
अतः सुषुम्णा त्रिगुणा ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका।
सत्त्वादित्रिगुणाधारा मता तु ब्रह्मनाडिका॥1 2॥

ब्रह्मसाधन में पहुंचने के बाद उसके ऊपर दो अंगुल भर वज्रा नाम की चित्रिणी नाड़ी है, जो तीन गुणों वाली और अत्यन्त सूक्ष्म अग्रभाग वाली है तथा वह ललन्ती और ललना है। अतः सुषुम्णा तीन गुणों वाली है। वे तीन गुण हैं—ब्रह्मा, विष्णु, शिव अर्थात् सुषुम्णा नाड़ी ब्रह्मात्मक (ब्रह्म आत्मा वाली) विष्णु आत्मक (विष्णु आत्मा वाली) और शिवात्मक (शिव आत्मा वाली) यह ब्रह्मनाडिका सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण तीन गुणों के आधार वाली मानी गयी है॥11-12॥

कन्दलग्नोर्ध्वदेशे तु सहस्रच्छदमुत्तमम्।
श्वेतोदरं तथा श्वेतकिञ्चल्कपरिमणिडतम्॥1 3॥

उस ब्रह्मनाड़ी की जड़ के ऊपर स्थान पर एक उत्तम सहस्रदल कमल है, जिसका उदर भाग श्वेत वर्ण का है तथा श्वेतकिञ्चल से परिमणिडत है॥13॥

पीतकर्णिकमाश्वर्यमैश्वर्यमजमव्ययम् ।
कमलं सर्वदेवानामाक्रीडं तद्वि पार्वति॥1 4॥

महादेव जी ने कहा कि हे पार्वति! वह सहस्र दलकमल पीली धारियों वाला है अर्थात् उस कमल में पीले वर्ण की रेखायें हैं, जो आश्वर्य पैदा करने वाला है। ऐश्वर्य रूप अर्थात् ईश्वरीय शक्ति सम्पन्न है। अजन्मा है तथा कभी भी नष्ट न होने वाला है तथा वह कमल समस्त देवताओं का क्रीडास्थल अर्थात् आमोद-प्रमोद का स्थान है॥14॥

तदूर्ध्वं त्र्यङ्गुलं गुह्यं मूलाधाराच्चतुर्दलम्।
रक्तं वशषसोपेतं डाकिन्या समधिष्ठितम्॥
ध्यानं तस्या प्रवक्ष्यामि सावधानाऽवधारय॥1 5॥

उस सहस्रदल कमल के ऊपर तीन अंगुल गुह्य स्थान है, जो गुह्यस्थान मूलाधार से चार पत्रों वाला है अर्थात् उसके मूलाधार जड़ से ही चार पते लगे हुए हैं। सहस्र दलकमल के ऊपर वाला गुह्यस्थान, जो मूलाधार से ही चार पत्रों वाला है और रक्तवर्ण का है तथा व, श, ष और स से युक्त डाकिनी ने समधिष्ठित है। अर्थात् व वर्ण, श वर्ण, ष वर्ण और स वर्ण वाली डाकिनी उस पर विराजमान है। अतः हे पार्वति ! मैं उसका ध्यान करना बताऊंगा। अतः तुम सावधान होकर सुनो॥15॥

रक्ताक्षीं रक्तवर्णा परशुजनभयकृच्छूलखट्वाङ्गहस्तां

वामे खड्गं दधानां चणकमपि सुधापूरितं चैकवकत्राम्।

अत्युग्रामुग्रदंष्ट्रामरिकुलमथर्नीं पायसान्ने प्रसक्तां

मूलाधारेऽमृतार्थे परिवृत्वससां डाकिनीं चिन्तयेत् ताम्॥16॥

पूर्व श्लोक में बताया कि सहस्रदल कमल में तीन अंगुल गुह्य स्थान है, जो लालरंग का है और व, श, ष और स से युक्त है, जिस पर डाकिनी विराजमान है। वह डाकिनी लाल आंखों वाली है तथा उसका समस्त शरीर लाल वर्ण का है तथा वह अपने हाथ में पशुओं और मनुष्यों के भय को काटने वाले शूल और खटिया के पावे को लिए हुए हैं। वे डाकिनी अपने बांये हाथ में खड्ग धारण की हुई हैं। मुख में चणक (चना) भी है और उनका मुख अमृत से भरा हुआ है। उनका रूप अत्यन्त भयावह है, उनके दांत अत्यन्त ऊंचे और तीक्ष्ण धार वाले हैं। वे शत्रु के कुल का मर्दन करने वाली हैं तथा खीर खाने में व्यस्त हैं अर्थात् खीर खाती हुई हैं तथा अमृत अर्थ वाले मूलाधार में स्थित होकर वस्त्र से ढंकी हुई हैं, ऐसी उन देवी डाकिनी का चिन्तन (ध्यान) करना चाहिए॥16॥

विशेष- ‘पशुजनभयकृत्’ का अर्थ पशुओं और मनुष्यों को भयभीत करने वाले भी हो सकता है।

ध्यायेत् तत्र त्रिकोणं च तन्मध्ये विवरं शुचि।

तत्र ध्यायेत् कुण्डलिनीं प्रसुप्तां भुजगाकृतिम्॥17॥

वहीं पर त्रिकोण का ध्यान करना चाहिए, उस त्रिकोण के मध्य में पवित्र विवर का ध्यान करना चाहिए। उस विवर (गुफा) में सर्प के आकार वाली सोयी हुई कुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिए॥17॥

संवेष्ट्याधोमुखं लिङ्गं त्रिवृत्या पुच्छसंयुतम्।
विनोद्वेगं विनोत्कण्ठां निजे याति ततोत्थिता॥18॥

उस विवर में नीचे को मुख किये हुए सम्यक् प्रकार से प्रविष्ट हुए तीन वृत्ति से पूँछ युक्त बिना किसी उद्गेग और उत्कण्ठा वाले लिंग और उत्थित लिङ्ग निज में जाता है॥18॥

हुताशतापसंविग्नां चोर्ध्वमात्रामृतार्थिनाम्।

ततो नयेत् पथि प्राज्ञो जीवयोगेन तत्पदम्॥19॥

अग्नि के ताप से संविग्न हुई और अमृत के याचकों के लिए ऊर्ध्व की मात्रा रखनेवाली का ध्यान करना चाहिए, वहाँ से जीवत्मा को जीव योग द्वारा उस परमपद के मार्ग में ले जाना चाहिए॥19॥

तदूर्ध्वं ध्वजमूले तु पङ्कजं षड्दलं परम्।

स्वाधिष्ठानाख्यमाश्र्यं सूक्ष्मं सर्वगुणान्वितम्॥

बभमैर्यवलैर्युक्तमारक्तं राकिणीस्थितम्॥20॥

उसके ऊपर ध्वजमूल में षट्दल (छः पत्तों वाले) कमल का ध्यान करना चाहिए, जो कमल स्वाधिष्ठान नामक है अर्थात् परमपद नामक है। आश्र्यपूर्ण है, सूक्ष्म और सब गुणों से युक्त है तथा जिस पर ब, भ, म, य, व, ल युक्त राकिणी देवी स्थित हैं॥20॥

श्यामां शूलाग्रहस्तां डमरुकरयुतां तीक्ष्णटङ्गं वहन्ती,

मुग्रां रक्तां त्रिनेत्रां शुचिकुटिललसच्चोग्रदंष्ट्रां प्रभाति।

दीप्तां तां देवदेवीं त्रितयकमलगां रक्तधारैकनाथां,

शुक्लान्ने सक्तचित्तामभिमतफलदां राकिनीं चिन्तयेत् ताम्॥21॥

अब राकिणी देवी की स्थिति को बताते हुए कहते हैं कि उस षट्दल कमल पर विराजमान राकिनी देवी श्याम वर्ण के शरीर वाली हैं, जिनके हाथ में शूल है तथा दूसरे हाथ में डमरु है। जो तीक्ष्ण तलवार (कुठार) को धारण करती हुई हैं। वे उग्र स्वरूप वाली है, जिनके लाल-लाल तीन नेत्र हैं। जो चमकते हुए सफेद और टेढ़े और तीक्ष्ण दांतों से सुशोभित है, जो त्रितयकमल पर जाने वाली है तथा रक्तधारा की एक स्वामिनी है अर्थात् शरीर में रक्त की धारा प्रवाहित करने वाली हैं। जो शुक्लान्न (श्वेत वर्ण वाले अन्न) में आसक्त चित्त वाली हैं तथा जो अमिट फल को प्रदान करने वाली है, ऐसी दीप्त देवों की देवी राकिनी देवी का चिन्तन करना चाहिए॥21॥

रं बीजं कर्णिकायां तु तदन्ते विष्णुलिङ्गकम्॥२२॥
॥ इति श्री भूतशुद्धितन्त्रे परमरहस्ये प्रथमः पटलः॥

—*—*—*—*

ऊपर उसमें ब, भ, म, य, व, ल वर्णों वाली देवी राकिनी है, उनकी कर्णिका में र, बीज है और उसके अन्त में विष्णु का लिङ्ग है॥२२॥

॥इस प्रकार भूत शुद्धि तन्त्र परमरहस्य में प्रथम पटल समाप्त॥

❖❖❖

द्वितीय पटलः

तदूर्ध्वं नाभिमूले तु पङ्कजं मणिपूरकम्।
नील दशदलं शुद्धं डादिकान्ताक्षरान्वितम्॥1॥

उसके ऊपर नाभि के मूल में तो नीले दश पत्तों वाला शुद्ध 'ड' आदि अक्षरों से युक्त मणिपूरक नाम का कमल है॥1॥

नीलां देवीं त्रिवक्त्रां त्रिनयनलसितां दंष्ट्रिणीमुग्ररूपां
वज्रं शक्तिं दधानामभयवरकरां दक्षवामक्रमेण।
ध्यात्वा नाभौ सुपद्मे दशदलविलसत्कर्णिके लाकिनीं ताम्
मांसाशीं गौरवर्णा भक्तोत्सुकाहृदयां विन्यसेत् साधकेन्द्रः॥2॥

उस मणिपूरक कमल में तीन मुखों वाली तीन नेत्रों से सुशोभित तीक्ष्ण दांतों वाली उग्ररूप वाली; वज्रशक्ति को धारण करने वाली, अभय वर प्रदान करने वाली अर्थात् निडर करने वाली, दक्ष और वामक्रम से अभय वर प्रदान करने वाले हाथों वाली, दशदल सुशोभित कलियों वाले सुन्दर कमल रूप नाभि में उस लाकिनी देवी का ध्यान करके मांस खाने वाली, गौरवर्ण वाली, भक्तों के उत्सुक हृदय वाली को साधकेन्द्र के द्वारा अपने हृदय में धारण करना चाहिए॥2॥

कर्णिकायां त्रिकोणस्थ रक्ताभं वह्निबीजकम्।
तदन्तं चैव लिङ्गं च ध्यात्वा सिद्धीश्वरो भवेत्॥3॥

उस कर्णिकाओं में तीन कोणों में स्थित रक्त आभा वाले वह्निबीजक और उसके अन्त में लिंग का ध्यान करके साधक को सिद्धीश्वर हो जाना चाहिए॥3॥

बाहोत्तरे मुखं तत्र त्रिकोणत्रयमुत्तमम्।
हृदि पीतं द्वादशार्णं कादिठान्तार्णसंयुतम्॥
अनाहताख्यं देवेशि! पङ्कजं सुमनोहरम्॥4॥

उसका मुख बाहर उत्तर में त्रिभुजाकार तीन उत्तम त्रिकोणों से युक्त है। हृदय में बारह वर्ण क से ठ के अन्त तक पीत रंग में हैं। वे हैं—क, ख, ग, घ, ड, च, छ, ज, झ, अ, ट, ठ ये सभी वर्ण हृदयस्थल में पीतवर्ण में स्थित हैं। भगवान् शंकर ने कहा कि हे देवेशि! वह अनाहत नामक सुन्दर और मनोहर कमल है॥4॥

तत्र ध्यायेदिमां तां रविदलकमले कामिनीं वेदहस्तैः
पाशं शूलं वहन्तीं डमरुकमभयं धारिणीं पीतवर्णाम्।
दध्यन्ने सत्तचित्तां...काकिनीं मत्तचित्तां
पत्रार्णेः कादिठान्तैः परिवृतवपुषां भावयेद् योगिनीं ताम्॥५॥

वहाँ उस रविदल कमल वाले अनाहत नामक कमल में स्थित इस उस कामिनी काकिनी देवी का ध्यान करना चाहिए, जो देवी अनेकों सूर्यों वाले अनाहत कमल में स्थित हैं।

जो देवी पाश और शूल धारण किये हुए है, हाथों में वेद है, डमरु धारण करने वाली हैं। जो पीत वर्णवाली है, जो दही और अन्न में चित्त को लगाये हुए हैं। मत्तचित्त वाली हैं। क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, झृ, ट, ठ इन बारह वर्णों से जिनका समस्त शरीर ढका हुआ है, ऐसी उन काकिनी योगिनी का भाव करना चाहिए॥५॥

कर्णिकायां च षट्कोणे वायुबीजयुतं महत्।
ततः क्रोडे ईशं तदधस्त्रिकोणे बाणलिङ्गकम्॥६॥
तन्मध्येऽष्टदलं रक्तं तत्र कल्पतरुं तथा।
इष्टदेवासनं चारु चन्द्रार्कोपरि राजितम्॥७॥

षट्कोण और कर्णिका में वायु बीजयुत (वायु के कारणरूप महान्) स्थित हैं। वही कोण ईश हैं, उसके नीचे त्रिकोण (त्रिभुज) में वाणलिङ्ग है, उसके मध्य में आठपत्तों वाला रक्तकमल है तथा वहीं पर कल्पवृक्ष स्थित है, वही चन्द्रमा और सूर्य के ऊपर 7 सुन्दर इष्ट देवासन शुभोभित हैं॥६-७॥

पिङ्गलाभं कण्ठदेशे विशुद्धाख्यं कलादलम्।
घोडशस्वरसंयुक्तं पङ्कजं व्योमसंस्थितम्।
हकारं धूम्रवर्णं तु तदङ्के च सदाशिवम्॥८॥

कण्ठदेश में पिङ्गला नाड़ी की आभा है और विशुद्धा नामक कलाओं का दल है। वहीं पर सोलह स्वरों अर्थात् अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ऋृ, ल, लृ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः से संयुक्त कमल व्योम (आकाश) में स्थित है, उस कमल की गोद में हकार (ह) इस रूप में धूम्रवर्ण के सदाशिव विराजमान है॥८॥

वहाँ पर जहाँ कि सोलह स्वरों से युक्त कमल आकाश (कण्ठाकाश) में संस्थित है, उस कमल में ह वर्ण के रूप में सदाशिव विराजमान हैं। वहाँ पर

साधकेन्द्र को शाकिनी का ध्यान करना चाहिए, उन शाकिनी देवी का ध्यान किस रूप में करना चाहिए बताते हैं।

देवीं ज्योतिःस्वरूपां त्रिनयनलसितां पञ्चवक्त्राभिरामां
हस्तैश्चापैश्च पाशं सृणिमपि दधतीं पुस्तकं ज्ञानमुद्राम्।
ध्यायेत् कण्ठस्थपद्मे निखिलपशुजनोम्नादिनीमस्थिसंस्थां
दुग्धान्ने प्रीतियुक्तां मधुमदमुदितां शाकिनीं साधकेन्द्रः॥१९॥

वहाँ ज्योति स्वरूप अर्थात् अत्यन्त प्रकाश स्वरूप तीन नेत्रों से सुशोभित सुन्दर पांच मुखों वाली, जो हाथों में धनुष, पाश और बाण और पुस्तक धारण की हुई हैं तथा जिनकी ज्ञान की मुद्रा है, जो कण्ठस्थ कमल में समस्त पशुओं और मनुष्यों की हड्डियों को धारण की हुई है। दूध और अन्न में जिनकी प्रीति है, ऐसी मधु के मद से मुदित (शराब के नशे में मस्त) शाकिनी देवी का ध्यान करना चाहिए॥१९॥

कर्णिकायां त्रिकोणस्थं पूर्णचन्द्रं च चिन्तयेत्।
हेमाभबीजमारूढमाकाशं तत्र चिन्तयेत्॥१०॥

त्रिकोण (त्रिभुज) में स्थित कर्णिका में पूर्णचन्द्रमा का चिन्तन करना चाहिए तथा वहाँ पर हिम की आभा के बीज स्वरूप अर्थात् हेमाभ के कारण पर आरूढ आकाश का चिन्तन करना चाहिए॥१०॥

शुक्लं सुवेषचरितं ततो देवं सदाशिवम्।
गिरिजाभिन्नदेहार्थं रौप्यहेमशरीरकम्॥११॥

।इति श्री भूतशुद्धितन्त्रे परमरहस्ये द्वितीयः पटलः॥

—◆◆◆◆—

उस आकाश के बाद वहाँ पर स्थित पार्वती संयुक्त शरीर वाले अर्थात् जिनका आधा शरीर अपना है और आधा पार्वती का है तथा जो शरीर चांदी और सोना से मिलकर बना हुआ है। ऐसे सदाशिव का ध्यान करना चाहिए॥११॥

।इस प्रकार श्री भूतशुद्धितन्त्र परमरहस्य में दूसरा पटल समाप्त हुआ॥

❖❖❖

अथ तृतीयः पटलः

तदूर्ध्वमाज्ञाचक्रं च द्विदलं धूम्रधूमकम्।
हस्ताभ्यां लसितं शङ्खमालाधिष्ठितमद्बुतम्॥1॥
कर्णिकायां त्रिकोणस्थं मज्जालिप्रणवाकृतिम्।
जलद्वीपनिभं चोर्ध्वं नादरूपं मनोरमम्॥
बिन्दुं मकाररूपं च तदूर्ध्वं मनसालयम्॥2॥

उसके ऊपर दो पत्तों वाला धूम्रधूमक आज्ञाचक्र है, जो सुगन्धित धुए से धूमित है। जिसके दोनों हाथों में अद्बुत शंख माला शोभित है। जिसकी कर्णिका में मदमत्त भ्रमर द्वारा प्रणव (ऊंकार) की आकृति वाला जलद्वीप के समान ऊपर मनोरम नाद रूप है अर्थात् ॐ नाद है, उसके ऊपर मकाररूप बिन्दु है, उसके ऊपर मनसालय स्थित है॥1-2॥

चक्रस्थां शुक्लवर्णं डमरुकरयुतामक्षसूत्रां कपालं
विद्यां मुद्रां दधानां त्रिनयनविलसदरक्तसद्वक्त्रयुक्ताम्।
हारिद्रान्ने प्रसक्तां मधुमदमुदितां शुक्लमञ्जस्वरूपां
देवीं देवेन्द्ररत्नाकरमधुदितां भावयेत् शाकिनीं ताम्॥3॥

उस मनसालय के चक्र में स्थित शुक्ल वर्ण वाली हाथ में डमरु ली हुई, अक्षमालासूत्र और कपाल, विद्या, मुद्रा धारण करती हुई, तीनों नेत्रों में शोभायुक्त लाल मुख वाली हरिद्र अन्न में प्रसक्त मधु के मद से मुदित शुक्ल कमल के स्वरूप वाली देवेन्द्र और रत्नाकर (समुद्र) के मधु से मुदित उस शाकिनी का ध्यान करना चाहिए॥3॥

नादस्थानं तदूर्ध्वं तु नादान्तं च तदूर्धर्वतः।
शक्तिस्थानं तदूर्धर्वेतु समनिं च तदूर्धर्वतः॥4॥
उन्मनीं चिन्तयेदूर्ध्वं ततो ब्रह्मपुरं व्रजेत्।
ब्रह्मरन्धस्थितं शुद्धं सहस्रच्छदमद्बुतम्॥5॥
शङ्खिनीशिखरासीनं प्रफुल्लं भानुतेजसा।
सर्वदेवाधिसंस्थानं गुरुराष्ट्रेण वर्त्मना॥6॥

उस मनसालय के ऊपर नादस्थान है, वह नाद स्थान उसके ऊपर से नाद के अन्त तक है। उसके ऊपर शक्तिस्थान है, उसके ऊपर से समनि का स्थान है। उसके ऊपर उन्मनी देवी का ध्यान करना चाहिए, उसके बाद ब्रह्मपुर

जाना चाहिए। उस ब्रह्मपुर में ब्रह्मरन्ध्र है, जो शुद्ध सहस्रदल कमल से अद्वृत है, उस सहस्रदल कमल पर सूर्य के तेज से प्रफुल्लित शंखिनी शिखर पर आसीन है। फिर गुरु राष्ट्र मार्ग द्वारा सब देवताओं का अधिष्ठान है॥4-6॥

हृदिस्थां कुञ्जिकां कृत्वा गत्वा तदुपरि शिवे!
कण्ठाद्यं समनुप्राप्य द्वारं सङ्कोचयेद् हठात्॥7॥

भगवान् शंकर ने कहा कि हे पार्वति! कुञ्जिका को हृदय में स्थित करके उसके ऊपर जाना चाहिए। फिर कण्ठ आदि को प्राप्त करके द्वार को दृढ़पूर्वक बन्द कर देना चाहिए॥7॥

उत्थाप्य परमेशानि! परमात्मनि दीपयेत्।
हुताशनं प्रतप्त्वा तु तापसम्भूतमूर्धर्वता॥8॥
प्रसुप्ता नागिनी लिङ्गे योनिवक्त्रे प्रधापयेत्।
ततः प्रचालयेद् वायुं यावत्नाभ्यन्तरेषु च॥9॥
गुरुराष्ट्रेण मार्गेण सकृत् तु कुम्भकेन वै।
आक्रम्यैवं ततो जीवः श्वासत्वेन यथाम्भसः॥10॥
ऊर्ध्वश्वासेनोर्ध्वमुखान् कोरकान् पङ्कजान् शिवे॥
प्रबोधयन् शनैर्भग्नमेरुशृङ्गं नयेत् सुधीः॥11॥

फिर हे परमेशानि! वहाँ उस द्वार को उठाकर परम आत्मा में दीप जलाना चाहिए, फिर वहाँ पर हुताशन प्रतप्त करके ताप से ऊर्ध्वता वाली सम्भूत सोयी हुई नागिनी (कुण्डलिनी) को लिङ्ग में और योनि के मुख में अच्छी तरह धारण करा देना चाहिए। उसके बाद उसके अन्तर्गत वायु को चलाना चाहिए तथा उस वायु को एक बार गुरु (विशाल) राष्ट्र मार्ग द्वारा कुम्भक नामक प्राणायाम से चलाना चाहिए। इस प्रकार तेजी से श्वास द्वारा जीव जल से बाहर निकलने के समान निकलकर ऊपर को श्वास ले जाने की क्रिया द्वारा नीचे को मुख किए हुए कमल की कोरकों पंखड़ियों को जगाते हुए (खिलाते हुए) धीरे-धीरे भान श्वास को मेरुदण्ड के शृङ्ग अर्थात् रीढ़ की हड्डी के सबसे ऊपरी भाग की ओर ले जाना चाहिए॥8-11॥

गृहीत्वा प्रविसेद् वापि तत्तदेवस्वरूपिणीम्।
चित्रिणीं विवरे रक्तभेदपङ्कसमुद्धवाम्॥12॥
सत्यदक्षे पार्श्वयोश्च नालस्थां वाहयेच्चताम्।
पद्मान् नाडीन् मध्यवर्त्मबोधितान् परमेश्वरि॥13॥

नालं वार्य विशेत् पद्मान् तेन भेदः प्रजायते।

यथाऽसौ परतिं रश्मिवहिं नाययति प्रभुः॥1 4॥

भेदयित्वा तथा चक्रं स उ जीवं नयेष्टताम्।

शिरःस्थानि महेशानि! चिन्तयेद् गुरुमार्गतः॥1 5॥

उसके बाद वहाँ से उस देवी के स्वरूप वाली, रक्तभेदपङ्क से उत्पन्न चित्रिणी को विवर में प्रवेश कराना चाहिये, फिर उसकी ठीक दक्षिण की ओर और पीछे की ओर कमलनाल में स्थित उस चित्रिणी को और मध्य मार्ग बोधित पद्मों को नाड़ियों को छोड़ देना चाहिये। फिर पद्मनाल को हटाकर कमलों में प्रवेश करना चाहिये और उसके द्वारा उसका भेदन कर देना चाहिये। उसके बाद उस कमल तथा चक्र का भेदन करके उस जीव को अपने इष्ट देव की ओर ले जाना चाहिये। अतः हे महेशानि! इन शिर के स्थानों को गुरु द्वारा बताये मार्ग से चिन्तन करना चाहिये। अन्यथा दुर्घटना भी हो सकती है॥1 2-15॥

साङ्गत्ये चतयोरित्थं सामरस्यं विभाव्य च।

तदुद्भूतरसेनैव तर्पयेद् देहदेवताम्॥1 6॥

पाननिष्ठां सदा हृष्टामानन्दाप्लुतविग्रहाम्।

तथा जब आत्मा की उस परमात्मा इष्टदेवता में संगति हो जाये, तब उन दोनों में समरसता की कल्पना करके उससे उत्पन्न रस से ही पाननिष्ठ प्रसन्न और आनन्द से युक्त शरीर वाले देहदेवता का तर्पण करना चाहिये॥1 6॥

पुनस्तेन पथा देवि! आनयेत् कुलगह्वरम्॥1 7॥

एवं यो चिन्त्येद् देवि! योगं चाहरहः सुधीः।

आजातयाममन्त्रस्थस्तुभ्यं नित्यं न संशयः॥1 8॥

भगवान् शंकर ने कहा कि हे देवि! फिर उसी मार्ग से अर्थात् उसी तरीके से उस देह देता को कुलगह्वर में लाना चाहिये। हे देवि! जो सुधी इस प्रकार आजातयाम मन्त्र को हृदय में स्थिर करके नित्य तुम्हारा चिन्तन करे तो इसमें सन्देह नहीं कि वह अवश्य सफलता प्राप्त करेगा॥1 7-18॥

एतद्योगं विना देवि! दीक्षापूजाजपादिकम्।

निष्फलं नात्र सन्देहो विजस्थे चषकं यथा॥1 9॥

हे देवि! इस योग के बिना दीक्षा पूजा जप आदि सब उसी प्रकार निष्फल हो जाता है, जिस प्रकार (विज) पर रखा हुआ चषक निष्फल हो जाता है॥1 9॥

एतत् तत्त्वं परं तत्त्वं यो जानाति स एव हि।
इत्येतत् कथितं तत्त्वं परं पिण्डविशोधनम्॥
विना येन न सिद्धि स्यात् सप्तजन्मकृतात् श्रमात्॥२०॥

हे देवि! यह जो मैंने बताया वह परमतत्त्व है, जो जानता है, वही तत्त्वज्ञानी है। इस प्रकार यह कहा हुआ तत्त्व समस्त शरीर को पूर्णरूप से शुद्ध करने वाला है। इस योग के बिना सात जन्म के किये गये परिश्रम से सिद्धि (सफलता) नहीं हो सकती॥२०॥

तथाऽन्यत् सम्प्रवक्ष्यामि गुह्याद् गुह्यतरं महत्।
यज्ज्ञात्वा सिद्धिमाप्नोति षण्मासादपि साधकः॥२१॥

॥इति श्रीभूतशुद्धितन्त्रे परमरहस्ये तृतीयः पटलः॥

—*—*—*—*

इसके अतिरिक्त दूसरे गुह्य से महान् गुह्यतर तत्त्व को कहूँगा, जिसको जानकर साधक छः माह में ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है॥२१॥

॥इस प्रकार श्रीभूतशुद्धितन्त्र के परमरहस्य में तीसरा पटल समाप्त हुआ॥

॥२१॥ श्रीभूतशुद्धितन्त्र के ♦♦♦ अन्ते इन चारों पटलों के बाबूनीका विवरण

अथ चतुर्थः पटलः

भैरव उवाच

इडायां सञ्चरेच्चन्द्रः पिङ्गलायां च भास्करः।

सुषुम्णायां सदा वह्नी रेतायोगविशेषतः॥1॥

भैरव ने कहा कि हे पार्वती तीन नाड़ियां होती हैं इडा, पिङ्गला और सुषुम्णा। इडा नाड़ी मेरु के बायीं ओर होती है। पिङ्गला दायी ओर होती है और सुषुम्णा नाड़ी मेरु (रीढ़) की हड्डी के अन्दर स्थित रहती है। अतः इडा नाड़ी में चन्द्रमा संचरण करते हैं और पिङ्गला में सूर्य संचरण करते हैं तथा सुषुम्णा नाड़ी में सदैव वीर्य के योग से वह्नि (अग्नि) संचरण करती है॥1॥

युगपत्रक्रमोद्योगमहं वेद्य न चापरः।

शुद्धिचित्तेन सिद्धेन गुरोः प्रियहुतं क्वचित्॥2॥

जानाति परमेशानि! गुरुपादप्रसाद्तः।

युगपत्र कम से अर्थात् सत्युग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग इनके आगमन क्रम से मैं इस योग को जानता हूँ। दूसरा कोई नहीं जानता है। कहीं-कहीं गुरु के सिद्ध शुद्ध चित्त द्वारा गुरु के पाद-प्रसाद से कोई जान लेता है॥2॥

त्रिधारां वहते तास्तु यस्तां वेत्ति स सर्ववित्॥3॥

इडायां यमुना देवि! पिङ्गलायां सरस्वती।

सुषुम्णायां वहेद् गङ्गा तासां योगत्तिधा भवेत्॥4॥

उन तीनों नाड़ियों में तीन धारायें बहती हैं, जो उसको जानता है, वह सब जानने वाला होता है। इडा नाड़ी में यमुना देवी बहती है। पिङ्गला नाड़ी में सरस्वती देवी बहती है तथा सुषुम्णा नाड़ी में गङ्गा देवी बहती है। इस प्रकार उनका योग तीन प्रकार का होना चाहिए॥3-4॥

सङ्गता ध्वजमूलेन विमुक्ता भूवियोगतः।

त्रियोगवेणी सा प्रोक्ता तत्र स्नानं महाफलम्॥5॥

ध्वजमूल से सङ्गत भोहों के वियोग से विमुक्त वह त्रियोग वेणी कही गयी है। अतः वहाँ पर स्नान महाफल को प्रदान करने वाला है॥5॥

ग्रहणेऽर्कस्य चन्दोर्वा सुषुम्णायां सदा शुभे।

गत्वा त्रिवेण्यां स्नात्वा च मनः सङ्कल्पपूर्वकम्॥6॥

ग्रासाद् विमुक्तिपर्यन्तं जप्त्वा सिद्धीश्वरो भवेत्।

सूर्य और चन्द्रमा के शुभ ग्रहणकाल में सुषुम्णा में त्रिवेणी में जाकर और स्नान करके मन के सङ्कल्पपूर्वक ग्रास से विमुक्ति पर्यन्त जपकर मनुष्य सिद्धियों का ईश्वर हो जाता है। अर्थात् जब सूर्य और चन्द्रमा का ग्रहण पड़ रहा हो, उस समय साधक सुषुम्णा में ध्यान लगाकर इडा पिङ्गला और सुषुम्णा तीनों नाड़ियों में ध्यान लगाकर मन में सङ्कल्प पूर्वक ग्रहण शुरू होने से अन्त तक जप करे तो वह सिद्धियों का ईश्वर हो जाता है तथा जो चाहे वह प्राप्त कर सकता है॥६॥

यस्तु मन्त्री सुषुम्णायां विमले बिन्दुतीर्थके॥७॥

गयाश्राद्धं कृतं तेन शताब्दं नात्र संशयः।

जो मन्त्री (मन्त्र जाप करने वाला) सुषुम्णा में विमलबिन्दु तीर्थ में गया श्राद्ध करे, वह सौ वर्ष तक जीता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है॥७॥

त्रिवेण्यां यस्तु स्नायाद्वै पुष्करे वा द्विजाकुले॥८॥

तस्य पुण्यफलं वक्तुं न शक्नोमि महेश्वरि।

नित्यं स्नात्वा च तीर्थेऽस्मिन् जपपूजादिकं चरेत्॥९॥

मन्त्रसिद्धिर्भवेत् तस्य पुरश्चर्यादिभिर्विना।

सहस्रारे गुरं ध्यात्वा परमानन्दनिर्वृत्तः।

कुर्वीताहरहः कृत्यं न च पापैर्विलिप्यते॥१०॥

शंकर भगवान् ने कहा कि हे देवि पार्वति! त्रिवेणी में पुष्कर और द्विजाकुल में स्नान करने से निश्चय ही उसके पुण्य फल को हे देवि! मैं बता नहीं सकता हूँ। अर्थात् असीमित पुण्यफल होता है। इस तीर्थ में नित्य स्नान करके यदि मनुष्य जप पूजा आदि करे, उस व्यक्ति को पुरश्चर्या आदि के बिना ही मन्त्रसिद्धि हो जाती है। सहस्रार सहस्रदल कमल में गुरु (भगवान् शिव) का ध्यान करके परमानन्द से पूर्णतः आवृत होकर (युक्त) होकर दिन प्रतिदिन यह कार्य करे तो वह व्यक्ति पापों से विलिप्त नहीं होता है॥८-१०॥

सहस्रदलपङ्कजं सकलशीतरस्मिप्रभं

वराभयकराम्बुजं विविधग्रन्थमालान्वितम्।

प्रसन्नवदनेक्षणं सकलदेवतारूपिणं

स्मरेत् शिरसि हंसगं तदभिधानपूर्वं गुरुम्॥११॥

अतः जब साधक परम गुरु सदाशिव के ध्यान में लीन हो जाये, तब

वहाँ उसे उस हजार पत्तों वाले कमल में स्थित, समस्त कलाओं से युक्त चन्द्रमा की प्रभा को धारण करने वाले, प्रसन्न मुख और नेत्रों वाले, समस्त देवता रूपी, हंसग (आत्मा में गमन करने वाले, उसी गुरु नाम वाले सदाशिव भगवान् शंकर का स्मरण करना चाहिये॥111॥

एतत् ते कथितं तत्त्वं सुगोप्यं पशुसङ्कटे।

न कस्मैचित् प्रवक्तव्यं यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः॥112॥

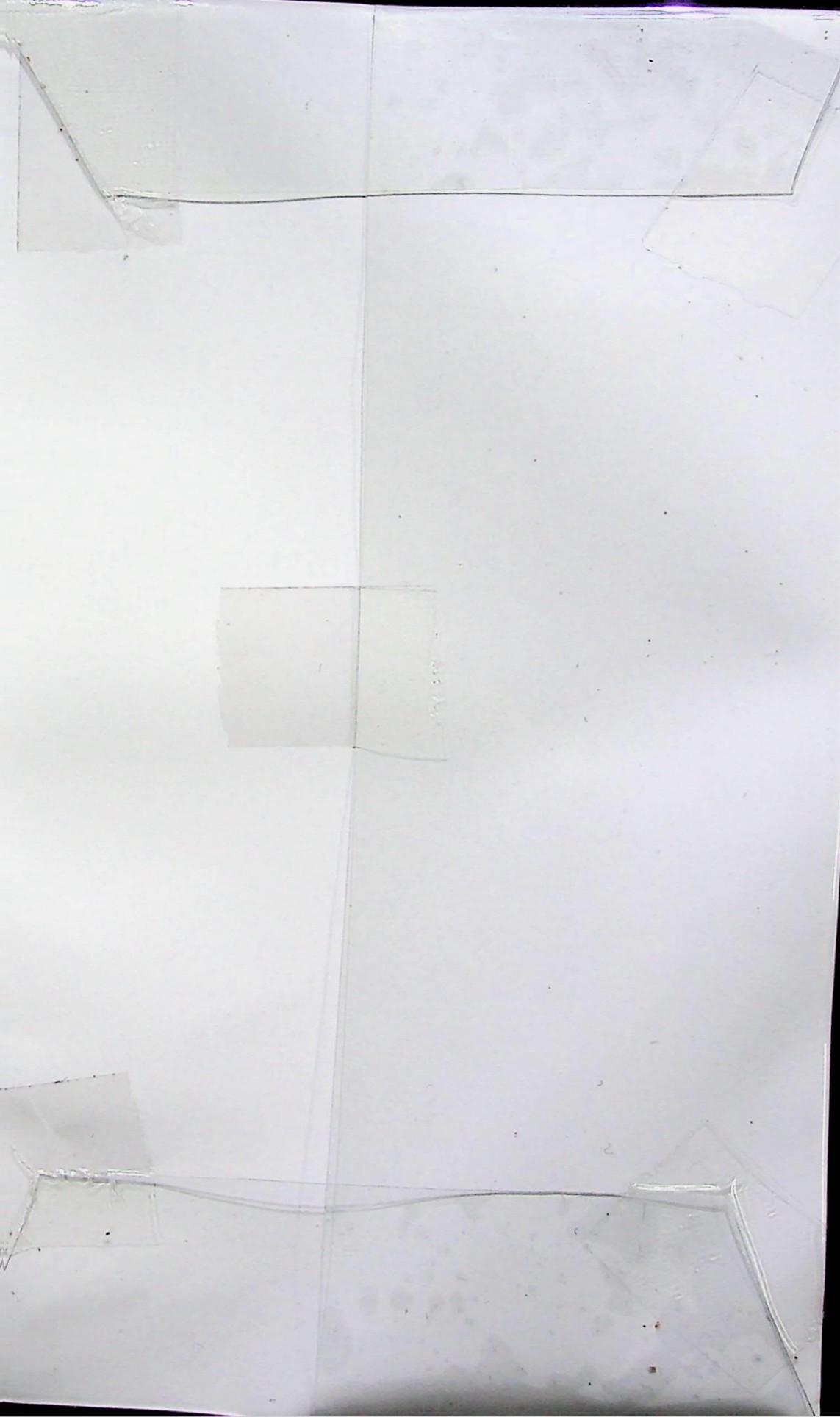
॥इति श्रीभूतशुद्धितन्त्रे परम रहस्ये चतुर्थः पटलः॥

—❀❀❀—

इस प्रकार भगवान् शंकर ने पार्वती से कहा कि हे देवि पार्वति! यह मैंने तुमसे पशु सङ्कट में अच्छी तरह से गोपनीय तत्त्व को कहा है। अतः यदि सिद्धि चाहती हो तो किसी को भी कभी मत बताना॥112॥

॥इस प्रकार श्री भूतशुद्धितन्त्र के परम रहस्य में चतुर्थ पटल समाप्त हुआ
तथा यह ग्रन्थ भी समाप्त हुआ॥

❖ ❖ ❖



तन्त्रशास्त्र-ग्रन्थाः

काकचण्डीश्वरकल्पतन्त्रम् । 'हरि हिन्दी व्याख्योपेतम्	
सम्पा० एवं व्याख्याकार— पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठी	७५.००
कालीतन्त्रम् । हिन्दीव्याख्यासंवलितम् ।	
संपा० एवं टीकाकार— प्रो. लक्ष्मीदत्तशास्त्री मालवीय श्रीकालीपटलपञ्चाङ्ग । कालीकवच, महाकाली सहस्रनामस्तोत्र श्रीकर्पूरगदिस्तुति सहितः	५०.००
कालीपूजापद्धतिः । हिन्दी अनुवाद सहित ।	४५.००
संपा.+व्याख्या श्री कपिलदेव नारायण	३७५.००
कालीरहस्यम् । 'शिवदत्ती' हिन्दी टीका सहित । (कालीपञ्चाङ्ग- कालीतन्त्र-कालीउपासना-कालीपूजापद्धतिरूपात्मकम्)।	
सम्पादक— पण्डित शिवदत्त मिश्र शास्त्री	७५.००
गन्धर्वतन्त्रम् । 'ज्ञानवती' हिन्दी टीका एवं श्लोकानुक्रमणिका सहित ।	
व्याख्याकार— डॉ० राधेश्याम चतुर्वेदी	६२५.००
दुर्गासप्तशती । (सचित्र) 'सर्वमङ्गला' हिन्दी व्याख्या, पूजाविधान सहित ।	
व्याख्याकार— पण्डित श्री हरेकांत मिश्र ।	
सप्तशत्यङ्गष्टक पूजाविधि, मन्त्रकोश, नवचण्डी, शतचण्डी, सहस्रचण्डी विधानादि सहित । सोधपूर्ण नवीन संस्करण	९५.००
बगलामुखीसाधना पद्धति । (बगलामुखी सहस्रनामावली सहित)	
हिन्दी टीका सहित । टीकाकार पं. हरिहरप्रसाद त्रिपाठी	७५.००
भारतीय तन्त्रशास्त्र सिद्धान्त और साधना। प्रस्तुत ग्रन्थ चार खण्डों में विभक्त है—	
प्रथमखण्ड तत्त्वमीमांसा (सिद्धान्त) पक्ष, द्वितीयखण्ड आचारमीमांसा, तृतीयखण्ड सृष्टिमीमांसा, चतुर्थखण्ड प्रमुख तान्त्रिक दृष्टियाँ	
—डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी 'आनन्द'	९००.००
लक्ष्मीतन्त्रम् । पाञ्चरात्रागमान्तर्गतं । 'सुधा' हिन्दी व्याख्योपेतम् ।	
सम्पादक एवं व्याख्याकार—डॉ. सुधाकर मालवीय	५७५.००
ललितोपाख्यानम्। ब्रह्माण्डपुराणान्तर्गतम्। 'निर्मला' हिन्दी व्याख्या सहित। संपा.+अनु. डॉ. प्रो. दलवीर सिंह चौहान	५५०.००
शरभ-तन्त्रम् (पक्षिराज तन्त्रम्) आकाशभैरव कल्पोक्तम्। साधनात्मक हिन्दी व्याख्या सहितम्। व्याख्याकारः—श्रीकपिलदेव नारायण।	३८५.००

Also can be had from : Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi.

ISBN : 978-81-218-0417-2

₹ 95.00